



श्रीविहङ्गमहाकविप्रणीतम्

विक्रमाङ्कदेवचरितम्

श्रीरामावतारशर्मणा संस्कृतम्

काश्यां ज्ञानमण्डलयन्त्रालये प्रकाशितम् ।

१९७८ विक्रमाब्दः

मूल्यं सार्द्धं करूप्यकः ।

891.21

B

महताव रायके प्रबंधसे ज्ञानमण्डल यन्त्रालय

महताव रायके प्रबंधसे ज्ञानमण्डल यन्त्रालय

महताव रायके प्रबंधसे ज्ञानमण्डल यन्त्रालय,
काशीमें छपकर मुद्रित हुआ !

भूमिका

यह विक्रमाङ्कदेवचरित महाकाव्य जगत्प्रसिद्ध महाकवि बिहणकी कृति है। विक्रम द्वादश शतकके पूर्वार्द्धके अन्तमें (शक एकादश शतकके आरम्भमें, ख्रिस्तीय एकादश शतकके अन्तमें) इस काव्यका निर्माण हुआ। इसके निर्माणके समय धारेश्वर भोज मर चुके थे। काव्य नायक चालुक्य विक्रमादित्य दक्षिणमें तथा अनन्त राजके पुत्र कलश देव कश्मीरमें राज्य कर रहे थे। चालुक्य विक्रमका समय ६६८-१०३८ शकाब्द है और कलशदेव का समय १००२-१०१० शकाब्द है।

ज्येष्ठ कलश और नागादेवीके पुत्र बिहण महाकवि हुए। इनका सोनेका सा रङ्ग था और ये जैसे सुन्दर थे वैसे ही बुद्धिमान भी थे। मथुरा कान्यकुब्ज प्रयाग, धार, गुजरात, आदिकी यात्रा करते, सब जगह शास्त्रार्थ और कवितामें गङ्गाधर आदि सामयिक विद्वानोंको पराजित करते हुए, कर्णाटमें चालुक्य विक्रमादित्यके यहां विद्यापतिका पद पाकर बिहणने इस महाकाव्यका निर्माण किया। बिहण चरित-जिसके चौरपञ्चाशिका भी अन्तर्गत हैं- और कर्णसुन्दरी नाटिका, ये दो और ग्रन्थ बिहणके नामसे प्रसिद्ध हैं। पर इन दोनोंकी कविता ऐसी प्रौढ़ नहीं जैसी विक्रमाङ्क देवचरितकी। शैली आदिमें इतना अन्तर है कि इन दोनोंका निर्माण बिहण महाकविके हाथसे संदिग्ध ही है। बिहण चरित बम्बईकी काव्यमालामें छपा है। इसमें अवन्तिराज वीरसिंहकी पुत्री शशिकलासे बिहणके प्रेमकी सुप्रसिद्ध कथा लिखी है।

पर ये नाम और यह समूची कथा कल्पितसी जान पड़ती है। जैसी कालिदास और विद्याधरीकी कथा है, वैसे ही यह भी मुग्धोंकी कल्पना है। अपने विषयमें जो कुछ कविने विक्रमाङ्कदेवचरितके अन्तिम या अठारहवें सर्गमें लिखा है, जिसका सारांश यहां दिया है, उतना ही प्रामाणिक है।

विक्रमाङ्क देव चरित महाकाव्य अठारह सर्गोंमें लिखा गया है। इसके नायक चालुक्य विक्रमादित्य हैं। १७ सर्गोंमें नायकका चरित है और १८वेंमें कविने अपना वृत्तान्त तथा कश्मीरका वर्णन किया है। प्रथम सर्गमें चालुक्यवंशकी उत्पत्ति, इस राजवंशका अयोध्यासे दक्षिणमें जाना और इस वंशके श्रीतैलप जयसिंहदेव तथा आहव-मल्लदेवका संक्षिप्त विजय वृत्तान्त है। द्वितीयमें आहवमल्लदेवके ज्येष्ठ पुत्र सोमदेव तथा मध्यम पुत्र विक्रमादित्यकी उत्पत्ति वर्णित है।

तृतीयमें विक्रमादित्यके कनिष्ठ भ्राता जयसिंहको उत्पत्ति और सोमदेवकी यौवराज्यप्राप्ति है। इसी सर्गके अन्तमें कान्चीपर विक्रमादित्यकी लूटमारका वर्णन है। चतुर्थमें आहवमल्लका मरण है। इसी सर्गके अन्तमें बड़े भाई सोमदेवकी कुनीति और दुराचारसे विरक्त हो घर छोड़कर विक्रमादित्यका देशान्तर जाना और उनका दिग्विजयारम्भ है। पंचममें पराजित चोल राजसे संधिका वर्णन है। षष्ठमें सोमदेवसे मिले हुए द्रविडराज विक्रमादित्यका युद्ध हुआ है, जिसमें द्रविड राजका पराजय, सोमदेवका कारावास और विक्रमादित्यको राजगद्दी हुई। सप्तममें प्रौढ वसन्तका वर्णन है। अष्टममें करहाट राजाकी पुत्री चन्द्रलेखाका स्वयंवर-वर्णन कालिदासीय इन्दुमतीके स्वयंवर वर्णनके ढंगपर है। दशममें पुनः वसन्तवर्णन तथा जलकेलि-वर्णन है। एकादशमें सन्ध्या वर्णन, रात्रि क्रीडा तथा मागधीकृत

राज-प्रबोधन हैं। द्वादशमें राजाका कल्याणपुरको लौट आना तथा ग्रीष्मकालिक जलक्रीडाका वर्णन है। त्रयोदशमें ग्रीष्मान्त तथा वर्षाका आरम्भ है। चतुर्दशमें शरदारम्भ और अपने छोटे भाईके विश्वास घातके कारण विक्रमादित्यकी पुनः युद्ध यात्राका वर्णन है। पञ्चदशमें घोर युद्ध और विक्रमादित्यका विजय है। षोडशमें हेमन्तकी शृंगयाका वर्णन है। सप्तदशमें विक्रमादित्यकी दानशीलताके वर्णनके बाद पुनः चोलराजसे कांचीके पास हुए युद्धका वर्णन है। इस युद्धमें भी विक्रमादित्यका ही विजय हुआ। काव्यकी भी यहीं समाप्ति है। अष्टादशमें कविने कश्मीरका वर्णन कर केवल अपना वृत्तान्त दिया है।

विहण महाकविकी प्रौढ़ि प्राचीन साहित्यज्ञोंमें चिरकालसे प्रसिद्ध है। भगवान् वाल्मीकि और व्यासकी कीर्ति तो भारतमें ही क्या, संसारके समस्त कवियोंके शिरपर स्थित है। पर उनके बादके कालिदास आदि महाकवियोंमें साहसाङ्क-चरित निर्माता परिमल पद्मगुप्तका और विक्रमाङ्कदेव चरितकार विहण-का बहुत बड़ा दर्जा है। कविताके गुणोंसे तो विक्रमाङ्कदेवचरित का महत्व है ही, परन्तु एक और भी बड़ा गौरव इसका इतिहासकी दृष्टिसे है। इधर तीन हजार वर्षसे भारतीय ऐतिहासिक चरित बहुत ही थोड़े मिलते हैं।

मुद्रा राक्षस नाटक, हर्ष चरित, विक्रमाङ्क चरित, कुमारपाल चरित आदि इस वर्गके एक हैं। इतिहासाध्येताओंके लिए ये बड़े प्रयोजनीय हैं। पर आधुनिक समयमें इसका लोप ही हो गया था। अस्ट्रिय (Austria) देशके विद्वान् बुलर महाशय-को कई वर्ष हुए इसको प्रतियां मिली थीं। इनके आधारपर बुलरने इसे छपवाया, पर छपी प्रतियां कुछ ही वर्षमें दुर्लभ हो गयीं पुनर्मुद्रणका आरम्भ नहीं हुआ। इस अभावकी पूर्तिके लिए

आज यह संस्करण प्रकाशित हुआ है । इसमें यथा शक्ति बुलरकी अशुद्धियोंका भी संशोधन किया गया है, तो भी छापने आदिमें अशुद्धियां रह गयी हैं; पर आशा है कि सज्जन लोग इस दुर्लभ पुस्तककी सफलताके आनन्दमें ऐसी छोटी त्रुटियोंको क्षमाकी दृष्टिसे देखेंगे ।

संस्कर्त्ता ।

शुद्धिपत्रम्

| पृष्ठे | श्लोके | अशुद्धम् | शुद्धम् | पृष्ठे | श्लोके | अशुद्धम् | शुद्धम् |
|--------|--------|------------------------|------------|--------|--------|------------|-----------|
| २ | १६ | रज्ज | रज्ज | ६५ | ६४ | अस्तःक्षमा | अस्तक्षमा |
| ४ | ३८ | याङ्गे | याङ्गे | १०१ | ४४ | वक्त्रा | वक्त्रा |
| ८ | ८६ | प्रया | प्रपा | १०१ | ५५ | साम्राज्य | साम्राज्य |
| | ६० | बाण्या | बाण्या | १०२ | ६८ | काञ्चन | काचन |
| १३ | २६ | दुनोति | दुनोतिमा | १०३ | ७७ | सरो ज | सरोज |
| | | मा | | १०४ | १ | शान्य | शान्य |
| १४ | ४० | रस्थि | करस्थि | | ५ | क्रमेण | क्रमेण |
| | | गुणै | गुणैः | | १० | यालिक | पालिक |
| २२ | ४८ | त्वम | त्वत्र | १०५ | २२ | कन्दकैः | कन्दलैः |
| | ५२ | श्रत्वे | श्रुत्वे | | २४ | द्रांस | द्रांस |
| २६ | १२ | डोय | डोप | १०६ | २८ | प्रवृषि | प्रावृषि |
| २७ | १६ | नाद्भ्रा | नोद्भ्रा | | ३७ | त्ययः | त्ययं |
| ५१ | ६१ | किमत्य | किमस्त्य | | | कर्मक | कार्मुक |
| ५७ | ६८ | भुवन | भुवनं | १०८ | ५७ | ध्रुवां | ध्रुवं |
| ५६ | १२ | हंसा | हंसाः | | ५७ | ललित | लालिता |
| ६४ | ७१ | लक्ष्मी | लक्ष्मी | | ६२ | वल्मा | वल्गा |
| ७३ | ८० | पृथै | वृथै | १०६ | ७५ | समीत | समील |
| | ८८ | फण | फणा | | ७७ | मीलत | मीलित |
| | ८६ | दोर्मण्ड | दोर्मण्डल | ११० | ८२ | बला | बला |
| ७६ | १२६ | स्थोद | क्षोद | ११० | ८२ | पारासु | परासु |
| ७६ | ७ | विवधो | विविधो | | ८३ | मम्बुधे | मम्बुधेः |
| ८७ | ७ | शतखण्ड | शतखण्डं | | ८७ | रःगर्जा | रगर्जा |
| | १२ | द्राङ्गिजा | द्राङ्गिजा | १११ | ६० | पूर्वतै | पूर्तैर्व |
| ८८ | २० | प्रतिहत | प्रतिहतं | ११२ | १३ | सन्मु | संमु |
| ६६ | ६५ | ६४ श्लोकानन्तरं पाठ्यः | | ११६ | २५ | क्षणः | क्षणः |
| ६३ | ८१ | चित्त | चित्तः | १२० | ३२ | अवलम्ब | अवलम्ब्य |
| ६४ | ८५ | बला | वेला | १२१ | ४१ | दग्धै | दग्धै |

| पृष्ठे | श्लोके | अशुद्धम् | शुद्धम् | पृष्ठे | श्लोके | अशुद्धम् | शुद्धम् |
|--------|--------|-----------|-----------|--------|--------|----------|---------|
| १२२ | ५६ | दिक्षु | दिक्षु | | ६० | मातिथे | मातिथे |
| | ६४ | हस्यस | हस्य | | ६२ | पराङ् | पराङ् |
| १२४ | ७६ | चितं | चितुं | १३६ | ६५ | निष्ठु | निष्ठु |
| | ८६ | सर्व | सर्वी | | | पक्ति | पङ्क्ति |
| १२८ | ४० | डकृत- | प्रिय- | १३६ | ६७ | मुत्सव | मुत्सह |
| | | चापदण्डे | विप्रयोगः | १४६ | ६२ | रस्था | रस्था |
| | ४१ | पि ीनि- | निविडी- | १४८ | ७८ | सलिवा | सलिला |
| | | विप्रिय- | कृतचा- | | | धर्मऽया | धर्मस्य |
| | | विप्रयोगः | पदण्डे | | | वभूवुः | वभूवुः |
| १३२ | २६ | अवाप्र | अवाप्त | १५० | ८७ | भग्नवा | भग्नः |
| १३३ | ३३ | गांत | गति | १५१ | ६५ | दिक्काट | दिक्कोट |
| १३४ | ७१ | चोज्व | चोज्ज्य | १५२ | १०० | जृम्भ | जृम्भ |
| १३५ | ५६ | ङ्का | ङ्कुरा | १५३ | १०६ | यशामये | यशोमये |
| | ५८ | प्र ल्भ | प्रगल्भ | १५३ | १०८ | शवर | शवर |



अथ विक्रमाङ्कदेवचरितम्

भुजप्रभादण्ड इवोर्ध्वगामी स पातु वः कंसरिपोः कृपाणः ।
यः पाञ्चजन्यप्रतिबिम्बभङ्गया धाराम्भसः केनमिव व्यनक्ति ॥१॥
श्रीधाम्नि दुग्धोदधिपुण्डरीके यञ्चञ्चरीकद्युतिमातनोति ।
नीलोत्पलश्यामलदेहकान्तिः स वोस्तु भूत्यै भगवान्मुकुन्दः ॥२॥
वक्षःस्थली रक्षतु सा जगन्ति जगत्प्रसूतेर्गरुडध्वजस्य ।
श्रियोङ्गरागेण विभाव्यते या सौभाग्यहेम्नः कषपट्टिकेव ॥३॥
एकः स्तनस्तुङ्गतरः परस्य वार्त्तामिव प्रष्टुमगान्मुखाग्रम् ।
यस्याः प्रियार्थस्थितिमुद्बुहन्त्याः सा पातु वः पर्वतराजपुत्री ॥४॥
सान्द्रां मुदं यच्छतु नन्दको वः सोल्लासदमीप्रतिबिम्बगर्भः ।
कुर्वन्नजस्रं यमुनाप्रवाहसलीलराधास्मरणं मुरारेः ॥५॥
पार्श्वस्थपृथ्वीधरराजकन्याप्रकोपविस्फूर्जित'कातरस्य ।
नमोस्तु ते मातरिति प्रणामाः शिवस्य सन्ध्याविषया जयन्ति ॥६॥
बचांसि बाचस्पतिभत्सरेण साराणि लब्धुं ग्रहमण्डलीव ।
मुक्ताक्षसूत्रत्वमुपैति यस्याः सा सप्रसादास्तु सरस्वती वः ॥७॥
अशेषविघ्नप्रतिषेधदक्षमन्त्राक्षतानामिव दिङ्मुखेषु ।
विक्षेपलीला करशीकराणां करोतु वः प्रीतिमिभाननस्य ॥८॥
अनश्रवृष्टिः अवणामृतस्य सरस्वतीद्विश्रमजन्मभूमिः ।
वैदर्भरीतिः कृतिनामुदेति सौभाग्यलाभप्रतिभूः पदानाम् ॥९॥
जयन्ति ते पञ्चमनादमित्रचित्रोक्तिसंदर्भविभूषणेषु ।
सरस्वती यद्द'दनेषु नित्यमाभाति वीणाभिव वादयन्ती ॥१०॥

साहित्यपाथोनिधिमन्यनोत्थं कर्णामृतं रक्षत हे कवीन्द्राः ।
 यदस्य दैत्या इव लुण्ठनाय काव्यार्थचौराः प्रगुणीभवन्ति ॥११॥
 गृह्णन्तु सर्वे यदि वा यथेष्टं नास्ति क्षतिः कापि कवीश्वराणाम् ।
 रत्नेषु लुप्तेषु बहुष्वमर्थैरद्यापि रत्नाकर एव सिन्धुः ॥१२॥
 सहस्रशः सन्तु विशारदानां वैदर्भलीलानिधयः प्रबन्धाः ।
 तथापि वैचित्र्यरहस्यलुब्धाः श्रद्धां विधास्यन्ति सचेतसोत्र ॥१३॥
 कुण्ठत्वमायाति गुणः कवीनां साहित्यविद्याश्रमवर्जितेषु ।
 कुर्यादनाद्रेषु किमङ्गनानां केशेषु कृष्णागुरुधूपवासः ॥१४॥
 प्रौढिप्रकर्षेण पुराणरीतिव्यतिक्रमः श्लाघ्यतमः पदानाम् ।
 अत्युन्नतिस्फोटितकञ्चुकानि वन्द्यानि कान्ताकुचमण्डलानि ॥१५॥
 व्युत्पत्तिरावर्जितकोविदापि न रज्जनाय क्रमते जडानाम् ।
 न मौक्तिकच्छिद्रकरी श्लाका प्रगल्भते कर्मणि टङ्किकायाः ॥१६॥
 कथासु ये लब्धरसाः कवीनां ते नानुरज्यन्ति कथान्तरेषु ।
 न ग्रन्थिपर्णप्रणयाश्चरन्ति कस्तूरिकागन्धमृगास्तृणेषु ॥१७॥
 जडेषु जातप्रतिभाभिमानाः खलाः कवीन्द्रोक्तिषु के वराकाः ।
 प्राप्ताग्निनिर्वाणगर्वमम्बु रत्नाङ्कुरज्योतिषि किं करोति ॥१८॥
 उल्लेखलीलाघटनापटूनां सचेतसां वैकटिकोपमानाम् ।
 विचारशाणोपलपट्टिकासु मत्सूक्तिरत्नानि निधीभवन्तु ॥१९॥
 न दुर्जनानामिह कोपि दोषस्तेषां स्वभावो हि गुणासहिष्णुः ।
 द्वेष्ट्यैव केषामपि चन्द्रखण्डविपाण्डुरा पुण्ड्रकशर्करापि ॥२०॥
 सहोदराः कुङ्कुमकेसराणां भवन्ति नूनं कविता विलासाः ।
 न शारदादेशमपास्य दूष्टस्तेषां यदन्यत्र मया प्ररोहः ॥२१॥
 रसध्वनेरध्वनि ये चरन्ति संक्रान्तवक्रोक्तिरहस्यमुद्राः ।
 तेस्मत्प्रबन्धानवधारयन्तु कुर्वन्तु शेषाः शुक्लवाक्यपाठम् ॥२२॥

अनन्यसामान्यगुणत्वमेव भवत्यनर्थाय महाकवीनाम् ।
 ज्ञातुं यदेषां सुलभाः सभासु न जल्पमल्पप्रतिभाः क्षमन्ते ॥२३॥
 अलौकिकोल्लेखसमर्पणेन विदग्धचेतःकषपट्टिकासु ।
 परीक्षितं काव्यसुवर्णमेतल्लोकस्य कण्ठाभरणत्वमेतु ॥२४॥
 किं चारुचारित्रविलासशून्याः कुर्वन्ति भूपाः कविसंग्रहेण ।
 किं जातु गुञ्जाफलभूषणानां सुवर्णकारेण वनेचराणाम् ॥२५॥
 पृथ्वीपतेः सन्ति न यस्य पार्श्वे कवीश्वरास्तस्य कुतो यशांसि ।
 भूपाः कियन्तो न बभूवुस्तव्यां जानाति नामापि न कोपि तेषाम् ॥२६॥
 लङ्कापतेः संकुचितं यशो यद्यत्कीर्तिपात्रं रघुराजपुत्रः ।
 स सर्व एवादिकवेः प्रभावो न 'कोपनीयाः कवयः क्षितीन्द्रैः' ॥२७॥
 गिरां प्रवृत्तिर्मम नीरसापि मान्या भवित्री नृपतेश्चरित्रैः ।
 के वा न शुष्कां मृदमभ्रसिन्धुसंबन्धिनीं मूर्धनि धारयन्ति ॥२८॥
 कर्णाभृतं सूक्तिरसं विमुच्य दोषे प्रयत्नः सुमहान्खलानाम् ।
 निरीक्षते केलिवनं प्रविश्य क्रमेलकः कण्टकजालमेव ॥२९॥
 एषास्तु चालुक्यनरेन्द्रवंशसमुद्गतानां गुणमौक्तिकानाम् ।
 मद्भारतीसूत्रनिवेशितानामेकावली कण्ठविभूषणं वः ॥३०॥
 लोकेषु सप्तस्वपि विश्रुतोसौ सरस्वतीविभ्रमभूः स्वयंभूः ।
 चत्वारि काव्यानि चतुर्मुखस्य यस्य प्रसिद्धाः श्रुतयश्चतस्रः ॥३१॥
 एकस्य सेवातिशयेन शङ्के पङ्के रहस्यासनतां गतस्य ।
 आराधितो यः सकलं कुटुम्बं चकार लक्ष्मीपदमम्बुजानाम् ॥३२॥
 ब्रह्मर्षिभिर्ब्रह्ममयीममुष्य सार्धं कथां वर्धयतः कदाचित् ।
 त्रैलोक्यबन्धोः सुरसिन्धुतीरे प्रत्यूषसंध्यासमयो बभूव ॥३३॥
 मृणालसूत्रं निजवल्लभायाः समुत्सुकश्चाटुषु चक्रवाकः ।
 अन्योन्यविश्लेषणयन्त्रसूत्रभ्रान्त्येव चञ्चुस्थितमाचकर्ष ॥३४॥

आरक्तमर्घ्योपणतत्पराणां सिद्धाङ्गनालामिव कुङ्कुमेन ।
 बिम्बं दधे बिम्बफलप्रतिष्ठां राजीविनीजीवितवल्ग्वभस्य ॥३५॥
 सुधाकरं वार्धकतः क्षपायाः संप्रेक्ष्य मूर्धानमिवानमन्तम् ।
 तद्विस्रवायेव सरोजिनीनां स्मितोन्मुखं पङ्कजवक्त्रमासीत् ॥३६॥
 ज्ञात्वा विधातुश्चुलुकात्प्रसूतिं तेजस्विनोन्यस्य समस्तजेतुः ।
 प्राणेश्वरः पङ्कजिनीबधूनां पूर्वाचलं दुर्गमिवात्तरोह ॥३७॥
 जगाम याङ्गेषु रथाङ्गनाम्नां परस्परादर्शनलेपनत्वम् ।
 सा चन्द्रिका चन्दनपङ्ककान्तिः शीतांशुशार्ङ्गफलके समज्ज ॥३८॥
 सन्ध्यासमाधौ भगवान्स्थितोऽथ शक्रेण बहुज्जलिना प्रणम्य ।
 विज्ञापितः शेषरपरिजातद्विरेफनादद्विगुणैर्वचोभिः ॥३९॥
 आस्ते यदैरावणवारणस्य मदाम्बुसङ्गान्मिलितालिमाला ।
 साम्राज्यलक्ष्मीजयतोरणाभे दन्तद्वये वन्दनमालिकेव ॥४०॥
 यदातपत्रं मम नेत्रपद्मसहस्रलोलालिकदम्बनीलम् ।
 कुरङ्गनाभीतिलकप्रतिष्ठां मुखे समारोहति राजलक्ष्म्याः ॥४१॥
 यन्नन्दने कल्पमहीरहाणां छायासु विश्रम्य रतिश्रमेण ।
 गायन्ति मे शौर्यरसोर्जितानि गीर्वाणसारङ्गदृशो यशंसि ॥४२॥
 किंवा बहूक्तैः पुरुहूत एष पात्रं महिम्नो यदनङ्कुशस्य ।
 स्वाभिन्स सर्वोपि शिरोधृतानां त्वत्पादसेवारजसां प्रभावः ॥४३॥
 निवेदितश्चारजनेन नाथ तथा क्षितौ संप्रति विप्लवो मे ।
 मन्ये यथा यज्ञविभागभोगः स्मर्तव्यतामेव्यति निर्जराणाम् ॥४४॥
 धर्मदुहामत्र निवारणाय कार्यस्त्वया कश्चिद्वार्यवीर्यः ।
 रवेरिंशुप्रसरेण यस्य वंशेन सुस्थाः ककुभः क्रियन्ते ॥४५॥
 पुरंदरेण प्रतिपाद्यमानमेवं सभाकर्ण्य वक्षो विरञ्चिः ।
 संध्याम्बुपूर्णे चुलुके सुमोच ध्यानानुविद्धानि विलोचनानि ॥४६॥

प्रकोष्ठपृष्ठस्फुरदिन्द्रनीलरत्नावलीकङ्कणडम्बरेण ।
 बन्धाय धर्मप्रतिबन्धकानां बध्नन्सहोत्थानिव नागपाशान् ॥४७॥
 उत्तर्जनीकेन मुहुः करेण कृताकृतावेक्षणबहुलक्षः ।
 रुवानिषेधन्निव चेष्टितानि दिक्पालवर्गस्य निरर्गलानि ॥४८॥
 भोगाय वैपुल्यविशेषभाजं कर्तुं धरित्रीं निजवंशजानाम् ।
 केयूरसंक्रान्तविमानभङ्ग्या भुजोद्धृतदमाभृदिवेद्यमाणः ॥४९॥
 अखर्वगर्वस्मितदन्तुरेण विराजमानोऽथरपल्लवेन ।
 समुत्थितः क्षीरविपाण्डुराणि पीत्वेव सद्यो द्विषतां यशंसि ॥५०॥
 सुवर्णनिर्माणमभेद्यमस्त्रैः स्वभावसिद्धं कवचं दधानः ।
 जयश्रियः काञ्चनविष्टराभं समुद्बहन्नुन्नतमंसकूटम् ॥५१॥
 स्वःसुन्दरीवृन्दपरिग्रहाय दत्तोज्जलिः संप्रति दानवेन्द्रैः ।
 इति प्रहर्षादमराङ्गनानां नेत्रोत्पलश्रेणिभिरर्च्यमानः ॥५२॥
 अपि स्वयं पङ्कजविष्टरेण देवेन दृष्टश्चिरमुत्सुकेन ।
 वाञ्छाधिकप्रस्तुतवस्तुसिद्धिसविस्मयस्मेरमुखाम्बुजेन ॥५३॥
 कषोपले पौरुषकाञ्चनस्य पङ्के यशःपाण्डुसरोरुहाणाम् ।
 व्यापारयन्दृष्टिमतिप्रहृष्टामवाप्तपाणिप्रणये कृपाणे ॥५४॥
 हेमाचलस्येव कृतः शिलाभिरुदारजाम्बूनदचारुदेहः ।
 अथाविरासीत्सुभटस्त्रिलोक्त्राणप्रवीणश्चुलुकाद्विधातुः ॥५५॥
 प्रस्थाप्य शक्रं धृतिमान्भवेति हर्षाश्रुपारिप्लवदृक्सहस्रम् ।
 स शासनात्पङ्कजह्रासनस्य मलद्विपक्षद्वयदीक्षितोभूत् ॥५६॥
 दमाभृत्कुलानामुपरि प्रतिष्ठापवाप्य रत्नाकरभोगयोग्यः ।
 क्रमेण तस्मादुदियाय वंशः शैरेः पदाद्गाङ्ग इव प्रवाहः ॥५७॥
 विपक्षत्रीराहुतमीर्तिहारी हारीत इत्यादिपुमान्स यत्र ।
 मानव्यनाभा च बभूव मानी मानव्ययंयः कृतवानरीणाम् ॥५८॥
 गलद्विलासालकपल्लवानि विशीर्णपत्रावलिमण्डनानि ।
 मुखानि वैरिप्रमदाजनस्य यद्भूपतीनां जगदुः प्रतापम् ॥५९॥

उत्खातविश्वोत्कटकरटकानां यत्रोदितानां पृथ्वीपतीनाम् ।
 क्रीडागृहप्राङ्गणलीलयैव बभ्राज कीर्तिर्भुवनत्रयेऽपि ॥६०॥
 यत्पार्थिवैः शत्रुकठोरकण्ठपीठास्थिनिर्लोठनकुण्ठधारः ।
 निन्ये कृपाणः पटुतां तदीयकपालशाणोपलपट्टिकासु ॥६१॥
 निरादरश्चन्द्रशिखामणौ यः प्रीतेऽपि लोकत्रितयैकवीरः ।
 क्षिप्रन्कृपाणं दशमेऽपि मूर्ध्नि स्वयंभृतः दमाधरराजपुत्र्या ॥६२॥
 प्रसाध्य तं रावणमध्युत्रासयां मैथिलेशः कुलराजयानीम् ।
 ते क्षत्रियास्तामवदातकीर्तिं पुरीमयोध्यां विदधुर्निवासम् ॥६३॥
 जिगीषवः केऽपि विजित्य विश्वं विलासदीक्षारसिकाः क्रमेण ।
 चक्रुः पदं नागरखण्डचुम्बिपूगदुमायां दिशि दक्षिणस्याम् ॥६४॥
 तदुद्भवैर्भूपतिभिः सलीलं चोलीरहःसालिणि दक्षिणाब्धेः ।
 करीन्द्रदन्ताङ्कुरलेखनीभिरलेखि कूले विजयप्रशस्तिः ॥६५॥
 द्वीपक्षमापालपरंपराणां दोर्विक्रमादुत्खननोन्मुखास्ते ।
 विष्णोः प्रतिष्ठेति विभीषणस्य राज्ये परं संकुचिता बभूवुः ॥६६॥
 द्वीपेषु कर्पूरपरागपाण्डुष्वासाद्य लीलापरिवर्तनानि ।
 भ्रान्त्या तुषारादितटे लुठन्तः शीतेन खिन्नास्तुरगा यदीयाः ॥६७॥
 श्रीतैजपो नाम नृपः प्रतापी क्रमेण तद्वंशविशेषकोभूत् ।
 क्षणेन यः शोणितपङ्कशेवं संख्ये द्विषां वीररसं चकार ॥६८॥
 विश्वभराकण्ठकराष्ट्रकूटसमूलनिर्मूलनकोविदस्य ।
 सुखेन यस्यान्तिकमाजगाम चालुक्यचन्द्रस्य नरेन्द्रलक्ष्मीः ॥६९॥
 शौर्योष्मणा खिन्नकरस्य यस्य संख्येषु खड्गः प्रतिपक्षकालः ।
 पुरन्दरप्रेरितपुष्पवृष्टिपरागसङ्गान्निविडत्वमाप ॥७०॥
 यस्याञ्जनश्यामलखड्गपट्टजातानि जाने धवलत्वमापुः ।
 अरातिनारीशरकाण्डपाण्डुगण्डस्थलीनिर्लुठनाद्यशंसि ॥७१॥
 स्फूर्जद्यशोहंसविलासपात्रं निखिंशनीलोत्पलमुत्प्रभं यः ।
 उत्तंसहेतोरीव वीरलक्ष्मीः संप्रामलीलासिरसश्चक्रे ॥७२॥

विधाय सैन्यं युधि सान्निमात्रं दासीकृतायाः प्रतिपक्षलक्ष्म्याः ।
 यः प्रातिभाव्यार्थमिवाजुहाव महीभुजः शत्रुनरेन्द्रकीर्तिम् ॥७३॥
 चालुक्यवंशमलमौक्तिकश्रीः सत्याश्रयोभूदथ भूमिपालः ।
 खड्गेन यस्य भ्रुकुटिक्रुधेव द्विषां कपालान्यपि चूर्णितानि ॥७४॥
 यस्त्वेवः संयुगयामिनीषु प्रोतप्रतिब्रमापतिमौलिरत्नाः ।
 गृहीतदीपाइव भिन्दते स्म खड्गान्धकारे रिपुचक्रवालम् ॥७५॥
 अबन्ध्यपातानि रणाङ्गणेषु सलीलमाकृष्टधनुर्गुणस्य ।
 यस्यानमत्कोटितया व्यराजदस्त्राणि चुम्बन्निव चापदण्डः ॥७६॥
 भूभृत्सहस्त्रार्पितदेहरन्ध्रैः क्रौञ्चाचलच्छिद्रविशारदानाम् ।
 सेहे न गर्वः पृथुसाहसस्य यस्त्वेषुभिर्भार्गवमार्गणानाम् ॥७७॥
 दूषारिदेहे समरोपमर्दसूत्रावशेषस्थितहारदान्नि ।
 यज्ञोपवीतभ्रमतो बभूव यस्य प्रहर्तुः क्षणमन्तरायः ॥७८॥
 प्राप्तस्ततः श्रीजयसिंहदेवश्चालुक्यसिंहासनमण्डनत्वम् ।
 यस्य व्यराजन्त गजाहवेषु मुक्ताफलानीव महायशांसि ॥७९॥
 यस्य प्रतापेन कदर्थ्यमानाः प्रत्यर्थिभूपालमहामहिष्यः ।
 अन्वस्मरंश्चन्दनपङ्किलानि प्रियाङ्गपालीपरिवर्तनानि ॥८०॥
 प्रतापभानौ भजति प्रतिष्ठां यस्य प्रभातेष्विव संयुगेषु ।
 सूर्योपलानामिव पार्थिवानां केषां न तापः प्रकटीबभूव ॥८१॥
 यात्रासु यस्य ध्वजिनीभरेण दोलायमाना सकला धरित्री ।
 आर्द्रव्रणाधिष्ठितपृष्ठपीठमकर्मठं कूर्मपतिं चकार ॥८२॥
 किरीटमाणिक्यमरीचिवीचिप्रच्छादिता यस्य विपक्षभूपाः ।
 चिताग्निभीत्या समराङ्गणेषु न संगृहीताः सहसा शिवाभिः ॥८३॥
 यात्रासु दिक्पालपुरीं विलुण्ठ्य न दिग्गजान्केवलमग्रहीद्यः ।
 पलायितास्ते जयसिन्धुराणां गन्धेन सप्तच्छदबान्धवेन ॥८४॥
 अपारवीरव्रतपारगस्य पराङ्मुखा एव सदा विपक्षाः ।
 अधिज्यचापस्य रणेषु यस्य यशः परं संमुखमाजगाम ॥८५॥

यशोवतंसं नगरं सुराणां कुर्वन्नगर्वः समरोत्सवेषु ।
 न्यस्तां स्वहस्तेन पुरंदरस्य यः पारिजातसूजमाससाद ॥८६॥
 तस्मादभूदाहवमल्लदेवस्त्रैलोक्यमल्लापरनामधेयः ।
 यन्मण्डलाग्रं न मुमोच लक्ष्मीधाराजलोत्था जलमानुषीव ॥८७॥
 आख्यायिकासीन्नि कथाद्भुतेषु यः सर्गबन्धे दशरूपके च ।
 पवित्रचारित्रतया कवीन्द्रैरारोपितो रामइति द्वितीयः ॥८८॥
 भूपेषु कूपेष्विव रिक्तभावं कृत्वा प्रयापालिकेव यस्य ।
 वीरश्रिया कीर्तिस्तुधारसस्य दिशां मुखानि प्रखयीकृतानि ॥८९॥
 कौक्षेयकः हमातिलकस्य यस्य पीत्वातिमात्रं द्विषतां प्रतापम् ।
 आलोक्य बाध्याम्बुभिराचचाम चोलीकपोलस्थलचन्दनानि ॥९०॥
 दीप्रप्रतापानलसंनिधानाद्विश्रुतिपसामिव यत्कृपाणः ।
 प्रसारपृथ्वीपतिकीर्तिधारां धारामुदारां कवलीचकार ॥९१॥
 अगाधपानीयनिमग्नभूरिभूभृत्कुटुम्बोपि यदीयखड्गः ।
 भाग्यक्षयान्मालवभर्तुरासीदेकां न धारां परिहर्तुमीशः ॥९२॥
 निःशेषनिर्वासितराजहंसः खड्गेन बालाम्बुदमेचकेन ।
 भोजक्षमाभृद्भुजपञ्जरेपि यः कीर्तिहंसीं विरसीचकार ॥९३॥
 भोजक्षमापालविमुक्तधारानिपातमात्रेण रणेषु यस्य ।
 कल्पान्तकालानलचण्डमूर्तिश्चित्रं प्रकोपाग्निरवाप शान्तिम् ॥९४॥
 यः कोटिहोमानलधूमजालैर्मलीमसीकृत्य दिशां मुखानि ।
 सत्कीर्तिभिः क्षालयतिश्मशश्वदखण्डतारापतिपाण्डुराणि ॥९५॥
 भुवं रणे यस्य जयाश्रुतेन जीवः क्षमाभर्तुरभूत्कृपाणः ।
 एका गृहीता यदनेन धारा धारासहस्रं यशसोवकीर्णम् ॥९६॥
 शतक्रतोर्मध्यमचक्रवर्ती क्रमादनेकक्रतुदीक्षितोपि ।
 ऐन्द्रात्पदादभ्यधिके पदे यस्तिष्ठन्न शङ्कास्पदतामयासीत् ॥९७॥
 चिन्तामणिर्यस्य पुरो वराकस्तथाहि वार्ता जनविश्रुतेयम् ।
 यत्तत्र सीवणतुलाधिकं चक्रसं पाषाणतुलामथिरोहम् ॥९८॥

विधाय रूपं भक्षकप्रमाणं भयेन कोणे क्वचन स्थितस्य ।
 कलेरिवोत्सारणकारणेन यो यागधूमैर्भुवनं करोथ ॥९९॥
 स्वाभाविकादुष्णगभस्तिभासः क्षत्रोष्मणो दृष्टिविघातहेतोः ।
 यस्मिन् परित्रस्त इति क्षितीन्द्रे क्षणं न चिक्षेप कलिः कटाक्षम् ॥१००॥
 अन्यायमेकं कृतवान्कृती यश्चालुक्वगोत्रोद्भववत्सलोऽपि ।
 यत्पूर्वभूपालगुणान्प्रजानां विस्मारयामास निजैश्चरित्रैः ॥१०१॥
 विशीर्णकर्णा कलहेन यस्य पृथ्वीभुजङ्गस्य निरर्गलेन ।
 संगच्छतेद्यापि न डाहलश्रीः कर्पूरताडङ्कनिभैर्यशोभिः ॥१०२॥

पाठान्तरम्

कर्णे विशीर्णे कलहेन यस्य पृथ्वीभुजङ्गस्य निरर्गलेन ।
 कीर्तिः समाश्लिष्यति डाहलोर्वी न दन्तताडङ्कनिभाधुनापि ॥१०३॥
 यस्यासिरत्युच्छलता रराज धाराजलेनेव रणेषु धाम्ना ।
 दूषारिमातङ्गसहस्रसंगमभ्युदय गृह्णन्निव वैरिलदमीम् ॥१०४॥
 यद्वैरिसामन्तनितम्बिनीनामश्रान्तसन्तापकदर्थमाने ।
 पराङ्मुखं शोषविशङ्कयेव कुचस्थले कुङ्कुमपङ्कमासीत् ॥१०५॥
 एकत्र वासादवसानभाजस्ताम्बूललक्ष्म्या इव संस्मरन्ती ।
 वक्त्रेषु यद्वैरिविलासिनीनां हासप्रभा तानवमाससाद ॥१०६॥
 यं वारिधिः प्रज्वलदस्त्रजालं वेलावनान्तेषु नितान्तभीतः ।
 भूयः समुत्सारणकारणेन समागतं भार्गवमाशङ्क ॥१०७॥
 रत्नोत्करग्राहिषु यद्गटेषु तदत्रुटन्मौक्तिकशुक्तिभङ्ग्या ।
 अस्फोटयतीरशिलातलेषु रोषेण मूर्धानमिवाम्बुराशिः ॥१०८॥
 यं वीक्ष्य पाथोदिरधिज्यचापं शोणाश्रमभिः शोणितशोणदेहैः ।
 क्षोभादभीदणं रघुराजब्राह्मजीर्णवस्त्रास्फोटमिवाचचक्षे ॥१०९॥
 राशोकृतं विश्वमिवावलोक्य वेलावने यस्य चमूस्समूहम् ।
 अभोविभूतेरपरिक्षेपेण क्षारत्वमधिर्बहु मन्यते स्म ॥११०॥

उत्तम्भयामास पयोनिचेर्यस्तीरे जयस्तम्भमदम्भवीरः ।
 असूयितं स्वैरविहारशीलैरालानभीत्या जलधारणेन्द्रैः ॥१११॥
 लब्ध्वा यदन्तःपुरसुन्दरीणां लावण्यनिष्पन्दमुपान्तभाजाम् ।
 गृहीतसारस्त्रिदशैः पयोधिः पेयूषसंदर्शनसौख्यमाप ॥११२॥
 जयैकरागी विजयोद्यमेषु दृष्ट्वा प्रयाणावधिमम्बुधिं यः ।
 उत्कण्ठितोभूद्दृशकण्ठशत्रुसेतौ समस्यापरिपूरणाय ॥११३॥
 दोर्दण्डदर्पाद् द्रविडप्रकाण्डं यः संमुखं धावितमेकवीरम् ।
 अभाजनं वीररसस्य चक्रे बाणोत्करच्छिद्रपरंपराभिः ॥११४॥
 पृथ्वीभुजङ्गः परिकम्पिताङ्गीं यशःपटोल्लुगठनकेलिकारः ।
 विधृत्य काङ्क्षीं भुजयोर्बलेन यञ्चोलराज्यश्रियमाचर्ष ॥११५॥
 चोलस्य यद्वीतिपलायितस्य भालत्वचं कण्टकिनो वनान्ताः ।
 अद्यापि किं वानुभविष्यतीति व्यपाटयन्द्रष्टुमिवाक्षराणि ॥११६॥

दहृत्यशेषं प्रतियोगिवर्ग-

मनर्गले यद्भुजशौर्यवद्भौ ।

प्रत्यर्थिपृथ्वीपतिचिन्त्यमानो

न कोपि मन्त्रः प्रतिबन्धकोऽभूत् ॥११७॥

ब्रूमस्तस्य किमस्त्वकौशलविधौ देवस्य विक्रामतः

पुष्पेषोरिव यस्य दुष्परिहराः सर्वैरखर्वाः शराः ।

राक्षामप्रतिभानमेव विदधे युद्धेषु यस्योर्जित-

ज्यानिष्ठयूतनितान्तनिष्ठुररवप्राप्ताग्रवादो भुजः ॥११८॥

इति श्रीविक्रमाङ्कदेवचरिते महाकाव्ये त्रिभुवनमल्लदेवविद्यापति-

काश्मीरकभट्टबिल्हणविरचिते प्रथमः सर्गः ॥१॥



चकार कल्याणमिति क्रमादसौ पुरं परार्ध्यं पृथिवीपुरंदरः ।

यदुच्चहर्म्यावलिदीपसंपदा विभाव्यते कज्जलसंनिभं नभः ॥१॥

निवर्तिताश्चन्दनलेपपाण्डुभिर्नतश्रुवां यत्र समुन्नतैः स्तनैः ।

मुखानिला एव कदर्थनक्षमा भवन्ति माने मलयाद्रिवायवः ॥२॥

क्षपाकरः कातररश्मिमण्डलः पुरंघ्रिगण्डस्थलकान्तिसंपदा ।

विकीर्णसंमार्जनभस्मरेणुना विभर्ति यस्मिन्मुकुरेण तुल्यताम् ॥३॥

विलासदोलायितदन्तपत्रयोः

क्षपासु यत्रेन्दुरलक्ष्यमण्डलः ।

प्रविश्य संक्रान्तिमिषेण योषितां

कपोलयोः कान्तिजलं विलुम्पति ॥ ४ ॥

गतोपि यत्र प्रतिबिम्बवर्त्मना समीपतां वञ्चयितुं प्रगल्भते ।

मुखानि जाग्रन्मदनानि शुश्रुवां सयामिकानीव न यामिनीपतिः ॥५॥

जलाशया यत्र हसन्ति संततं नवेन्द्रनीलद्रवनिर्मलोदराः ।

शरत्समुत्सारितमेघकदम्बं कलिन्दकन्याहृदमेचकं नभः ॥६॥

प्रकर्षवत्या कपिशीर्षमालया यदुद्भटस्फाटिकवप्रसंहतिः ।

विलोकयत्यम्बरकेलिदर्पणे विलासधौतामिव दन्तमण्डलीम् ॥७॥

पुराङ्गनावक्त्रसहस्रकान्तिभिस्तिरोहिते रात्रिषु तारकापतौ ।

क्व रौप्यकर्पूरकरण्डपाण्डुरः शशीति यत्र श्रमसेति रोहिणी ॥८॥

यदीयलीलास्फटिकस्थलीभुवाममुग्धदुग्धाब्धिसमत्विषां पुरः ।

दद्याग्निनिर्दग्धवनस्थलोपमं विलोक्यते कज्जलकश्मलं नभः ॥९॥

तटद्गुमाणां प्रतिबिम्बमालया सपारिजातामिव दर्शयन्निद्रयम् ।

स यत्तडागः कुरुते विडम्बनां गृहीतसारस्य सुरैः पयोनिधेः ॥१०॥

प्रतिक्षणं क्षालितमन्युना रणे प्रयुक्तरक्षस्य नृपेण मानिना ।

न यस्य कक्षां शतमन्युरक्षिता पुरी पुरप्राग्रहरस्य गाहते ॥११॥

करोति गण्डस्थलचन्द्रमण्डले विलासवेल्लन्मणिकुण्डलातिथौ ।

न यत्र विप्रस्तकुरङ्गचक्षुषां निघर्षभीत्येव पदं कुरङ्गकः ॥१२॥

अमुष्य लोकत्रितयाद्भुतैर्गुणैरतीत्य मार्गं मनसोपि तिष्ठतः ॥
 असौ सदा मानसगोचरस्थिता कथं तुलायामलका प्रगल्भते ॥२५॥
 विजित्य सर्वाः ककुभः सभार्गवप्रचण्डकोदरहृपरिश्रमो नृपः ।
 उवाच तत्रार्थिशतानि पूरयन्फलं हि पात्रप्रतिपादनं श्रियः ॥२६॥
 जगत्यनर्घेषु समस्तवस्तुषु क्षितीश्वरः पादतले क्षियतेऽपि ।
 अभूद्विना पुत्रमुखेन्दुदशनं प्रभातनीलोत्पलदीनलोचनः ॥२७॥
 उवाच कण्ठागतवाष्पगद्गदैः पदैः कदाचित्सहधर्मचारिणीम् ।
 सरस्वतीहारलतामिवोज्ज्वलां प्रकाशयन्दन्तमयूखचन्द्रिकाम् ॥२८॥

फलेन शून्यः सुतरां दुनोति

सामयं गृस्थाश्रमधर्मपादपः ।

विलोकयामि प्रतिबिम्बमात्मनः

सुताभिधानं त्वयि नाधुनापि यत् ॥ २९ ॥

अलक्ष्णं बालमृगाक्षि सृज्यते न किञ्चिदङ्गेषु तदेदृशः परम् ।
 पुराकृतः पुण्यविपर्ययो मम भुवं फलद्विप्रतिबन्धकस्त्वयि ॥३०॥
 अवीक्षमाणा सदृशं गुणैर्मम क्रमागता श्रीरियमाश्रयं पुरः ।
 पयोधिमध्यस्थितपीतकूपकस्थिता शकुन्तीव मुहुः प्रकम्पते ॥३१॥
 प्रियप्रसादेन विलाससंपदा तथा न भूषाविभवेन गेहिनी ।
 सुतेन निर्व्याजमलीकहासिना यथाङ्गपर्यङ्कगतेन शोभते ॥३२॥
 वहन्ति हिस्त्राः पशवः कमात्मनो गुणं वितर्क्यात्मजरक्षणश्रमम् ।
 पदार्थसामर्थ्यमचिन्त्यमीदृशं यदत्र विश्राम्यति निर्भरं मनः ॥३३॥
 किमश्वमेधप्रभृतिक्रियाक्रमैः रुतोस्ति चेन्नोभयलोकबान्धवः ॥
 ऋणं पितृणां भपनेतुमक्षमाः कथं लभन्ते गृहमेधिनः शुभम् ॥३४॥
 प्रतापशौर्यादिगुणैरलंकृतोऽप्युदैति तावन्नकृतार्थतां नृपः ।
 सुतेन दोर्विक्रमलब्धकीर्तिना न यावदारोहति पुत्रिणां धुरि ॥३५॥
 निशम्य देवस्य नितान्तदुःखिता कथामिति श्रोत्रपथप्रमाथिनीम् ।
 जगाद किञ्चिन्न नरेन्द्रकुन्दरी परं निशश्वास तरङ्गितालका ॥३६॥

स धीरुर्वीरदुरधीरलोचनामथाङ्गमारोप्य कृपार्द्रमानसः ।
 हरन्निवातङ्ककलङ्कमुज्ज्वलद्विजावलीकान्तिजलैरवोचत ॥३७॥
 अलं विषादेन करोषि किं मुखं कवोष्णनिःश्वासविधूसराधरम् ।
 अभीष्टवस्तुप्रतिबन्धिनामहं कृताग्रहो निग्रहणाय कर्मणाम् ॥३८॥
 अधीतवेदोस्मि कृतश्रुतागमः अमोस्ति भूयानितिहासवर्त्मसु ।
 गुरुष्ववज्ञाविमुखं सदा मनस्तदभ्युपायोत्र मया न दुर्लभः ॥३९॥
 किमस्ति दुष्प्रापमसौ निषेव्यते कुलप्रभुर्बालमृगाङ्कशेखरः ।
 रस्थितस्यापि चकोरलोचने न पात्रमालस्यहतास्तपस्विनः ॥४०॥
 तदेष तावत्तपसे सह त्वया प्रभूतभावः प्रयते यतेन्द्रियः ।
 विभावरीवल्लभखण्डमण्डनः स यावदायाति दयां जगद्गुरुः ॥४१॥
 विधाय शान्त्यै कलुषस्य कर्मणस्तदेष सर्वेन्द्रियतापनं तपः ।
 नयामि भक्त्या ऋटिति प्रसन्नतामखण्डया खण्डशशाङ्कशेखरम् ॥४२॥
 तथेति देव्या कृतसंमतिस्ततः समस्तचिन्तां विनिवेश्य मन्त्रिषु ।
 अभूदनुष्ठानविशेषतत्परः स पार्थिवः प्रार्थितवस्तुसिद्धये ॥४३॥
 तपः स्वहस्ताद्दत्तपुष्पपूजितत्रिलोचनः स्थण्डिलवासधूसरः ।
 तथा स राजर्षिरसाधयद्यथा महर्षयोस्मादपकर्षमाययुः ॥४४॥
 ससौकुमार्यैकधनोपि सोढवांस्तपोधनैर्दुष्प्रसहं परिश्रमम् ।
 रराज तीव्रे तपसि स्थितो नृपः शशीव ताराद्युतिमण्डलातिथिः ॥४५॥
 नृपं कठोरव्रतचर्यया कृशं समाहिता सा नरनाथसुन्दरी ।
 निशातशाणोश्निखितं समन्वगात्प्रभेव माणिक्यमतीव निर्मला ॥४६॥
 मृगाङ्कचूडस्य किरीटनिम्नगातरङ्गवातैरिव वारितश्रमा ।
 उपाचरत्सम्यगसौ नराधिपं स्वहस्तलिप्तेश्वरमन्दिराजिरा ॥४७॥
 तथा विधायाः सदृशं यदुन्नतेर्मतं यदौदार्यधनस्य चेतसः ।
 तद्वद्रिकया दयितस्य पूजने जितेन्द्रियः कल्पयति स्म पार्थिवः ॥४८॥
 इति क्षितीन्द्रश्चिरमिन्दुशेखरप्रसादनाय व्रतमुग्रमाश्रितः ।
 कदाचिदाकलयति ह्यभारतीं अथानपूजयाम्येव नमश्चरीम् ॥४९॥

अलं चुलुक्यक्षितिपालमण्डन श्रमेण विश्राम्यतु कर्कशं तपः ॥
 कमप्यपूर्वं त्वयि पार्वतीपतिः प्रसादमारोहति भक्तवत्सलः ॥५०॥
 इयं त्वदीया दयिता भविष्यति क्षितीन्द्र पुत्रत्रितयस्य भाजनम् ।
 चुलुक्यवंशः शुचितां यदजितैर्यशोभिरायास्यति मौक्तिकैरिव ॥५१॥
 निधिः प्रतापस्य पदं जयश्रियः कलालयस्ते तनयस्तु मध्यमः ।
 दिलीपमान्धातुमुखादिपार्थिवप्रभामतिक्रम्य विशेषमेष्यति ॥५२॥
 सुतद्वयं ते निजकर्मसंभवं मम प्रसादात्तनयस्तु मध्यमः ।
 पयोनिधेः पारगतामपि श्रियं स दोर्बलाद्राम इवाहरिष्यति ॥५३॥
 गिरं निपीय श्रुतिशुक्तिमागतां सुधामिव व्योमपयोनिधेरिति ।
 उदञ्जिरोमाञ्जतया समन्ततः स शैत्यसंपर्कमिव न्यवेदयत् ॥५४॥
 उदञ्चदानन्दजलप्लुतेक्षणस्ततः प्रमोदालसलोचनोत्पलाम् ।
 स वल्लभा मन्यपुरंघ्रिदुर्लभैर्गुणैरुपेतां गुणवानतोषयत् ॥५५॥
 शनैर्विधाय व्रतपारणाविधिं धनैः कृतार्थीकृतविप्रमण्डलः ।
 अखण्डसौभाग्यविलासया पुनस्तया समं राज्यशुखेष्वरज्यत ॥५६॥
 क्रमेण तस्यां कमनीयमात्मजं शुभे मुहूर्ते पुरुहूतसंनिभः ।
 अवाप्य संपादितमांसलोत्सवः परामगान्निर्वृतिमीश्वरः क्षितेः ॥५७॥
 स सोमवन्नेत्रचकोरपारणां चकार गोत्रस्य यदुज्ज्वलाननः ।
 यथोचितं सोम इति क्षमापतेस्ततः प्रसन्नादभिधानमाप्तवान् ॥५८॥
 अनन्यसामान्यतनूजशंसिनीं स्मरन्नजसूं गिरमुद्गतां दिवः ।
 द्वितीयगर्भार्थमभूत्स निर्भरं समुत्सुको मध्यमलोकनायकः ॥५९॥
 स्थितस्य गर्भे प्रभवेव कस्यचिद्विलिप्यमानां स्फटिकामलत्विषः ।
 स गण्डपालीं विसृज्य गण्डपाण्डुरां ददर्श देव्याः पृथिवीपतिस्ततः ॥६०॥
 स हेमवृष्टिं महतीमकारयच्चकार चित्रायुषयाचितानि च ।
 हरप्रसादोचितसूनुलालसश्वकार किं किं न नरेन्द्रचन्द्रमाः ॥६१॥

उवाह धौतां क्षितिपालवल्लभा सुधाप्रवाहैरिव देहकन्दलीम् ।
 विषादपङ्कजयतः क्षमापतेर्निरन्तरं तु प्रससाद मानसम् ॥६२॥
 निषीड्य चन्द्रं पयसे निवेशिता ध्रुवं तदीयस्तनकुम्भयोः सुधा ।
 यदुत्पलश्यामलमाननं तयोः सलाञ्छनच्छायमिव व्यराजत ॥६३॥
 नरेन्द्रकान्ताकुचहेमकुम्भयोः सुधारसं क्षीरमिधेयं विश्रुताः ।
 हिमोपचारार्पितमार्द्रचन्दनं श्रियं दधे गालनशुभ्रवाससः ॥६४॥

नरेन्द्रपुत्रस्य कृते सुरक्षितं

क्षितीशकान्ताकुचकुम्भयोः पयः ।

विलासहारोज्ज्वलसौक्तिकच्छला

त्समल्लिकावासमिव व्यधीयत ॥ ६५ ॥

मृगीदृशः श्यामलचूचकच्छलात्कुचद्वये भूपसुतोपयोगिनि ।
 प्रभावसंक्रान्तरसायनौषधीदलद्वयं नीलमिव व्यराजत ॥६६॥
 निरन्तरायाससमर्थमर्थिनां कथं नु दारिद्र्यमसौ सहिष्यते ।
 न येन मध्यस्थमपि व्यषह्यत स्थितेन गर्भे नरनाथयोषितः ॥६७॥
 वलिः समुल्लासन्नपाचकार यः स कारणादत्र कुतोपि वर्तते ।
 इतीव गर्भः क्षितिपालयोषितः शशंस भञ्जन्नुदरे वलिस्थितिम् ॥६८॥
 कृतावतारः क्षितिभारशान्तये न पीड्यमानां सहते महीमयम् ।
 इतीव सा गर्भभरालसा शनैः पदानि विक्षेप मृगायतेक्षणा ॥६९॥
 सशब्दकाञ्चीमणिबिम्बितैर्वक्षौ सखीजनैः साद्रुतगर्भधारिणी ।
 उपास्यमाना कुलदेवतागणैः समन्ततो यामिकतां गतैरिव ॥७०॥
 अलंकृता दुष्प्रसहेन तेजसा रराज सा रत्नमयीषु भूमिषु ।
 महागृहाणां प्रतिबिम्बडम्बरैः प्रणम्यमानेव कुलाचलैरपि ॥७१॥
 कलत्रमुर्वीतिलकस्य मेखलाकलापमाश्लिष्यमरीचिभिर्दधे ।
 उदेष्टतः सूर्यसमस्य तेजसः समुद्रतं जालमिवाततं पुरः ॥७२॥
 क्षपामुखेषु प्रतिबिम्बितः शशी हृदि क्षमावल्लभलोलचक्षुषः ।
 जगाम गर्भे दधतः सुखस्थितिं नरेन्द्रसुनोरुपधानतामिव ॥७३॥

नृपप्रिया स्थापयितुं पदद्वयीमियेष दिक्कुञ्जरकुम्भभित्तिषु ।
 चिराय धाराजलपानलम्पटा कृपाणलेखासु मुमोच लोचने ॥७४॥
 मुहुः प्रकोपादुपरि स्थितासु सा चकार तारास्वपि पाटले दृशौ ।
 गुरुस्मया कारयितुं दिगङ्गनाः पदाब्जसंवाहनमाजुवाह च ॥७५॥
 उदञ्चितभ्रूमुखराणि संततं विलोकयामास विभूषणान्यपि ।
 अजायत स्तब्धशिरःसु तेजसा गृहप्रदीपेष्वपि मत्सरान्विता ॥७६॥
 इति स्फुरच्चारुविचित्रदोहदा निवेदयन्ती सुतमोजसां निधिम् ।
 प्रतिक्षणं सा हरिणायतेक्षणा दृशोः सुधावर्तिरभून्महीभुजः ॥७७॥
 कृतेषु सर्वेष्वथ शास्त्रवर्त्मना यथाक्रमं पुंसवनादिकर्मसु ।
 विशेषध्विन्हैर्निजमीशितुः क्षितेर्वधूः समासन्नफलं न्यवेदयत् ॥७८॥
 त्रिलोकलक्ष्म्येव सलीलमीक्षितः कृतद्रवैश्चन्द्रकरैरिवाप्लुतः ।
 अदूरवाञ्छालतिकाफलोदयः क्वचिन्न माति स्म मुदा नरेश्वरः ॥७९॥
 भिषग्भिरापादितसर्वभेषजं वितीर्णरक्षाविधिमण्डलाक्षतम् ।
 विशारदाभिः प्रसवोचिते विधौ निरन्तरं गोत्रवधूभिरर्चितम् ॥८०॥
 विवेश सुभूरथ स्रुतिकागृहं प्रधानदैवज्ञनिवेदिते दिने ।
 समुल्लसद्भिः शकुनैः सहस्रशः समर्पयन्ती नृपतेर्महोत्सवम् ॥८१॥
 ततः प्रदीपेष्वपि तत्र विस्फुरत्प्रभाधरेष्वर्तिवशाज्जपत्स्वव ।
 विलासहंसीमपि बालकान्वितां परिच्छदे प्रष्टुमुपायमुत्सुके ॥८२॥
 निखातरक्षौषधिगेहदेहलीसमीपसज्जीकृतशस्त्रपाणिषु ।
 इतस्तत्स्त्राटनमक्षतोत्करैर्विधाय हुंकारिषु मन्त्रवादिषु ॥८३॥
 गृहोदरस्थे जरतीपरिग्रहे किमप्युपांशु स्वमतोपदेशिनि ।
 वितीर्णकर्णासु निवासपञ्जरादनल्पशोकासु शुकाङ्गनास्वपि ॥८४॥
 अलभ्यत प्राक्तनचक्रवर्तिना न जन्म यत्राद्भुतधाम्नि केनचित् ।
 तथाविधं लग्नमवाप्य नन्दनः शिवप्रसादान्नृपतेरजायत ॥८५॥
 चतुर्भिः पताका ।

सूरप्रसूनान्यपतन्सषट्पद—

ध्वनीनि दध्वान सुरेन्द्रदुन्दुभिः ।

परं प्रसादं ककुभः प्रपेदिरे

गुणैकुमारस्य सहे।त्थितैरिव ॥८६॥

नवप्रतापाङ्कुरचक्रकान्तया निरन्तरा रात्रिकदीपसंपदा ।

श्रियं जगल्लोचनबालचन्द्रमाः समाजहारोद्भयसंध्ययेव सः ॥८७॥

आसनरत्नगृहभित्तिषु निर्मलासु

लोकोत्तरेण वपुषा प्रतिबिम्बितेन ।

सेवां स्मरिष्यति कृतज्ञतयेति दिग्भि-

रङ्गे गृहीत इव राजसुतो रराज ॥८८॥

अकथयदवनीन्दोर्नन्दनोत्पत्तिवार्तां

प्रथमममरवृन्दानन्दिनान्दीनिनादः ।

तदनु तदनुरूपोत्साहतः सुन्दरीणां

त्वरितगमनलीलागद्गदो वाग्विलासः ॥८९॥

चञ्चच्चारणदीयमानकनकं संनद्धगीतध्वनि

स्फूर्जद्गायकलुण्ठयमानकरटप्रारब्धनृत्तोत्सवम् ।

पूर्णं मङ्गलतूर्यदुन्दुभिरवैरुत्तालवैतालिक-

शलाघालङ्घितपूर्वपार्थिवमथ दमाभर्तुरासीद्गृहम् ॥९०॥

अथ समुचिते कर्मण्यास्थापरेण पुरोधसा

कथितमवनीनाथः सर्वं विधाय विधानवित् ।

प्रतिमुहुरसौ सूनुस्पर्शान्महेत्सवमन्वभू-

दिह हि भुवने गार्हस्थ्यस्य प्रधानमिदं फलम् ॥९१॥

इति श्रीविक्रमांकचरिते महाकाव्ये त्रिभुवनमल्लदेवविद्यापति-

काश्मीरकमट्टविल्हणविरचिते द्वितीयः सर्गः ॥२॥

स विक्रमेणाद्भुततेजसा च चेष्टाविशेषानुमितेन बालः ।
 श्रीविक्रमादित्य इति क्षितीन्दोरवाप विख्यातगुणः समाख्याम् ॥१॥
 देवस्य चालुक्यविभूषणस्य भार्या यशोरञ्जितदिङ्मुखेन ।
 तेनावदातद्युतिना रराज साम्राज्यलक्ष्मीरिव विक्रमेण ॥२॥
 आलम्ब्य हारं करपल्लवेन पयोधरं पातुमसौ प्रवृत्तः ।
 भोगेष्ववाह्या गुणिनो ममेति स्वभावमात्मीयमिवाभ्यधत् ॥३॥
 मातृस्तनोत्संगविलासहारप्रभा प्रविश्येव विनिःसरन्ती ।
 तस्यानिमित्तस्मितचन्द्रिकाभून्नरेन्द्रनेत्रोत्सववैजयन्ती ॥४॥
 मुष्टिप्रविष्टारुणरत्नदीपप्रभालता तस्य समुल्लसन्ती ।
 विपक्षकण्ठक्षतजानुलिप्ता कृपाणलेखा सहजेव रेजे ॥५॥
 त्यक्तवोपविष्टान्यदसौ कुमारः समुत्थितानां सविधे जगाम ।
 आगामि तेनाधिकमुन्नतात्मा नीचेषु वैमुख्यमिवाचचक्षे ॥६॥
 धात्रेयिकायाः स्मितपूर्वकं यददत्त हुङ्कारमसौ कुमारः ।
 अपूरयत्तेन नृपस्य कर्णौ पेयूषण्डूषपरंपराभिः ॥७॥
 यदुत्थितः सोढुलिसंग्रहेण यत्किञ्चिद्व्यक्तमवोचतापि ।
 अभीक्षणमद्वयोः अवसोश्च तेन क्षमापतेः संवननं बभूव ॥८॥
 क्रमेण संपादितचूलकर्मा चालुक्यभूपालधुरंधरस्य ।
 विनोदलीलाकुसुमोच्चयानां स नन्दनो नन्दनतामवाप ॥९॥
 उत्संगमारुह्य नरेश्वरस्य स पांसुलीलापरिभूसराङ्गः ।
 निजाङ्गतः संगलितैः परागैश्चक्रे मनः कार्मणचूर्णयोगम् ॥१०॥
 राज्ञां प्रणामाञ्जलिसंपुटेषु किमप्यवज्ञामुकुलीकृताक्षः ।
 तस्यैकहस्ताम्बुरुहप्रणामे कृतार्थमात्मानममंस्त देवः ॥११॥
 प्रतिक्षणं कुन्तलपार्थिवस्य वितन्वतस्तन्मुखचुम्बनानि ।
 तदीयदन्तच्छदजन्मनेव रागेण चेतः परिपूर्णमासीत् ॥१२॥
 मुखेन्दुसंचारकृताभिलाषकुरङ्गभीत्यर्थमिवापितेन ।
 कण्ठावसक्तेन स राजसूनुरराजत व्याघ्रनखाङ्कुरेण ॥१३॥

क्रीडन्समुत्सारितवारनारीमञ्जीरनादागतराजहंसः ।
 एकः क्षितेः पालयिता भविष्यन्स राजहंसासहनत्वमूचे ॥१४॥
 स पीडयन्नायसपञ्जरस्थान्क्रीडापरः केसरिणां किशोरान् ।
 समाददे भाविरिपुद्विपेन्द्रयुद्धोपयोगीव तदीयशौर्यम् ॥१५॥
 प्राप्नोदयः पादनखैश्चकासे स बालचन्द्रः परिवर्धमानः ।
 अभ्यर्घ्यमानः सहखेलनाय बालैरपत्यैरिव शीतरश्मेः ॥१६॥
 परां प्रतिष्ठां लिपिषु क्रमेण जगाम सर्वासु नरेन्द्रसूनुः ।
 पुण्यात्मनामत्र तथाविधानां निमित्तमात्रं गुरवो भवन्ति ॥१७॥
 अभ्यासहेतोः क्षिपतः पृषत्कान्नरेन्द्रसूनोः सकलासु दिक्षु ।
 प्रहारभीतेव परिभ्रमन्ती पार्थस्य कीर्तिर्विरलीबभूव ॥१८॥
 लावण्यलुब्धाभिरलब्धमेव भूपालकन्यामधुपाङ्गनाभिः ।
 कवित्ववक्तृत्वफला चुचुम्ब सरस्वती तस्य मुखारविन्दम् ॥१९॥
 तं बालचन्द्रं परिपूर्यमाणमालोक्य लावण्यकलाकलापैः ।
 कुमुद्वतीनामिव कामिनीनां निशासु निद्रा विमुखीबभूव ॥२०॥
 धैर्येण तस्मिन्नवधीर्यं याति स्मरोत्सुकानां नगराङ्गनानाम् ।
 आबद्धमुग्धभ्रुकुटिच्छटानां पेतुः सकोपं नयनोत्पलानि ॥२१॥
 लावण्यलक्ष्मीकुलधाम्नि तत्र विवर्धमाने शनकैः कुमारे ।
 कासामजायन्त न कामिनीनां निद्रादरिद्राणि विलोचनानि ॥२२॥
 तेजस्विनामुन्नतिमुन्नतात्मा सेहे न बालोपि नरेन्द्रसूनुः ।
 देवोपि भास्वाञ्छरणेच्छयेव समाश्रितो विष्णुपदं रराज ॥२३॥
 उच्चैः स्थितं तस्य किरीटरत्नं तेजोधनानामुपरि स्थितस्य ।
 क्षमामिव प्रार्थयितुं लुलोठ संक्रान्तिभङ्गया मणिपादपीठे ॥२४॥
 अत्रान्तरेभूजयसिंहनामा पुत्रस्तृतीयोपि नराधिपस्य ।
 स्वप्नेपि संवादयशोदरिद्रश्चन्द्रार्धचूडस्य न हि प्रसादः ॥२५॥
 सर्वासु विद्यासु किमप्यकुण्ठमुत्कण्ठमानं समरोत्सवेभ्यः ।
 श्रीविक्रमादित्यमशावलोक्य स जित्तपामास तपः कदाचित् ॥२६॥

अलङ्करोत्यद्भुतसाहसालङ्कः सिंहासनं चेदयमेकवीरः ।
 एतस्य सिंहीमिव राजलक्ष्मीमङ्कस्थितां कः क्षमतेभियोक्तुम् ॥२७॥
 करोमि तावद्युवराजमेनमत्यक्तसाम्राज्यभरस्तनूजम् ।
 तटद्वयीसंश्रयणाद्धातु धुनीव साधारणतां नृपश्रीः ॥२८॥
 एवं विनिश्चित्य कृतप्रयत्नमूचे कदाचित्पितरं प्रणम्य ।
 सरस्वतीनूपुरसिञ्जितानां सहोदरेण ध्वनिना कुमारः ॥२९॥
 आज्ञा शिरश्चुम्बति पार्थिवानां त्यागोपभोगेषु वशे स्थिता श्रीः ।
 तव प्रसादात्सुलभं समस्तमास्तामयं मे युवराजभावः ॥३०॥
 जगाद देवोऽथ मदीप्सितस्य किं वत्स धत्से प्रतिकूलभावम् ।
 ननु त्वदुत्पत्तिपरिश्रमे मे स चन्द्रचूडाभरणः प्रमाणम् ॥३१॥
 धत्से जगद्रक्षणयामिकत्वं न चेत्त्वमङ्गीकृतयौवराज्यः ।
 मौर्वीरवापूरितदिङ्मुखस्य क्लान्तिः कथं शाम्यतु मद्भुजस्य ॥३२॥
 आकर्ण्य कर्णाटपतेः सखेदमित्थं वचः प्रत्यवदत्कुमारः ।
 सरस्वतीलोलदूकूलकान्तां प्रकाशयन्दन्तमयूखलेखाम् ॥३३॥
 वाचालतैषा पुरतः कवीनां कान्त्या मदोयं सविधे सुधांशौ ।
 त्वत्सन्निधौ पाटवनाटनं यत्तथापि भक्त्या किमपि ब्रवीमि ॥३४॥
 विचारचातुर्यमपाकरोति तातस्य भूयान्मयि पक्षपातः ।
 ज्येष्ठे तनूजे सति सोमदेवे न यौवराज्येऽस्ति ममाधिकारः ॥३५॥
 चालुक्यवंशोऽपि यदि प्रयाति पात्रत्वमाचारविपर्ययस्य ।
 अहो महद्वैशसमाः किमन्यदनङ्कुशोभूत्कलिकुञ्जरोयम् ॥३६॥
 लक्ष्म्याः करं ग्राहयितुं तदादौ तातस्य योग्यः स्वयमग्रजो मे ।
 कार्यं विपर्यासमलीमसेन न मे नृपश्रीपरिरम्भणेन ॥३७॥
 ज्येष्ठं परिम्लानमुखं विधाय भवामि लक्ष्मीप्रणयोन्मुखश्चेत् ।
 किमन्यदन्यायपरायणेन मयैव गोत्रे लिखितः कलङ्कः ॥३८॥
 तातश्चिरं राज्यमलंकरोतु ज्येष्ठे ममारोहतु यौवराज्यम् ।
 सलीलमाक्रान्तदिगन्तरोहं द्वयोः पदातिव्रतमुद्ग्रहामि ॥३९॥

रामस्य पित्रा भरतोभिषिक्तः क्रमं समुल्लङ्घ्य यदात्मराज्ये ।
 तेनोत्थिता स्त्रीजित इत्यकीर्तिरद्यापि तस्यास्ति दिगन्तरेषु ॥४०॥
 तदेष विश्राम्यतु कुन्तलेन्द्र यशोविरोधी मयि पक्षपातः ।
 न किं समालोचयति क्षितीन्दुरायासशून्यं सम यौवराज्यम् ॥४१॥
 पुत्राद्वचः श्रोत्रपवित्रमेवं श्रुत्वा क्षमत्कारमगान्धरेन्द्रः ।
 इयं हि लक्ष्मीर्धुरि पांसुलानां केषां न चेतः कलुषीकरोति ॥४२॥
 सस्नेहमङ्गे विनिवेश्य चैनमुवाच रोमाञ्चतरङ्गिताङ्गः ।
 क्षिपन्निवात्युज्ज्वलदन्तकान्त्या प्रसादमुक्तावलिमस्य कण्ठे ॥४३॥
 भाग्यैः प्रभूतैर्भगवानसौ मे सत्यं भवानीदयितः प्रसन्नः ।
 चालुक्यगोत्रस्य विभूषणं यत्पुत्रं प्रसादीकृतवान्भवन्तम् ॥४४॥
 एतानि निर्यान्ति वचांसि वक्त्रात्कस्यापरस्य श्रवणामृतानि ।
 मधूनि लेह्यानि सुरद्विरेकैर्न पारिजातादपरः प्रसूते ॥४५॥
 यस्याः कृते भूमिभृतां कुमाराः केषां न पात्रं नयविप्लवानाम् ।
 उन्मत्तमातङ्गसहस्रगुर्वी सा राज्यलक्ष्मीस्तृणवल्गुस्ते ॥४६॥
 लङ्कासमीपाम्बुधिनिर्गतेयं रक्तासवैस्तृप्यति राक्षसीव ।
 लक्ष्मीरसौ त्वद्भुजदण्डबद्धा पात्रं भवित्री विनयव्रतस्य ॥४७॥
 जानामि मार्गं भवतोपदिष्टं ममापि चालुक्यकुले प्रसूतिः ।
 किं त्वभ्रं लक्ष्मीर्गुणबन्धहीने निसर्गलोला कथमेति दाढ्यम् ॥४८॥
 किञ्चिन्न मे दूषणमस्ति पृच्छ दैवज्ञचक्रं यदि कौतुकं ते ।
 एतस्य साम्राज्यममन्यमानाः पापग्रहा एव गृहीतपापाः ॥४९॥
 साम्राज्यलक्ष्मीदयितं जगाद त्वामेव देवोपि मृगाङ्गमौलिः ।
 लोकस्तुतां मे बहुपुत्रतां तु पुत्रद्वयेन व्यतनोत्परेण ॥५०॥
 तन्मे प्रमाणी कुरु वत्स वाक्यं चालुक्यलक्ष्मीश्चिरमुन्नतास्तु ।
 निर्मत्सराः क्षोणिभृतः स्तुवन्तु ममाकलङ्कं गुणपक्षपातम् ॥५१॥
 श्रुत्वेति वाक्यं पितुरादरेण जगाद भूयो विहसन्कुमारः ।
 मद्भाग्यदोषेण दुराग्रहोयं तातस्य मत्कीर्तिकलङ्कहेतुः ॥५२॥

यदि ग्रहास्तस्य न राज्यदूताः कारुण्यशून्यः शशिशेखरो वा ।
 तैरेव तातो भविता कृतार्थस्तद्धार्यतां कीर्तिविपर्ययो मे ॥५३॥
 अशक्तिरस्यास्ति न दिग्जयेषु यस्यानुजोहं शिरसा धृताञ्जः ।
 स्थानस्थ एवाद्भुतकार्यकारी बिभर्तु रत्नामणिना समत्वम् ॥५४॥
 इत्यादिभिश्चित्रतरैर्वचोभिः कृत्वा पितुः कौतुकमुत्सवं च ।
 अकारयज्ज्येष्ठमुदारशीलः स यौवराज्यप्रतिपत्तिपात्रम् ॥५५॥
 स्वयं समाधास्यति चन्द्रमौलिरम्भानकीर्तैरभिवाञ्छितं मे ।
 कार्यं विचार्येति सुतोपदिष्टं स सर्वमुर्वीपतिरन्वतिष्ठत् ॥५६॥
 ज्येष्ठे कृतेपि प्रतिपत्तिपात्रे तमेव लक्ष्मीरनुमन्यते स्म ।
 पूरेण निम्ने निहितापि सिन्धुरपेक्षते सागरमार्गमेव ॥५७॥
 देवोपदेशाद्गुणदर्शनाच्च स एव भित्ते नृपतेरुवास ।
 यथा स्तुतं रत्नपरीक्षकेण दृष्टप्रभावं च महार्हरत्नम् ॥५८॥
 स यौवराज्यश्रियमाश्रितस्य ज्येष्ठस्य राज्ये तु पितुः स्थितस्य ।
 कार्यं द्वयारप्यखिलं बभार भूशेषयोभारमिवादिक्कर्मः ॥५९॥
 आज्ञापयामास स वन्दिताञ्जं तमेव सर्वत्ररणोत्सवेषु ।
 पपौ च भूपस्तदुपाजितानि यशोवतंसानि जयामृतानि ॥६०॥
 तत्कुम्भिकुम्भस्थलचीनपिष्टविपाटलो वारिनिधिर्बभासे ।
 आपूरितञ्चोलबलक्षयोत्थरक्तापगानामिव मण्डलेन ॥६१॥
 चालुक्यरामे हरिवाहिनीभिः सहागते तत्र तटीं पयोधिः ।
 प्रादुर्भवन्मौक्तिकशुक्तिभङ्ग्या भयेन दन्तानिव निश्चर्कष ॥६२॥
 तस्मिन्प्रविष्टे मलयाद्रिगुञ्जं तद्वाहिनीकुञ्जरकर्णतालैः ।
 वियोगिनीनामुपतापनाय चैत्रं विना चन्दनवायुरासीत् ॥६३॥
 अदर्शयत्कामपि राजहंसलीलामसौ कुन्तलराजसुनुः ।
 निस्त्रिशधाराजलसंगतं यद्द्विषां यशःक्षीरमिवाचर्कष ॥ ६४ ॥
 तस्मिन्समाकर्षति चापदण्डं वीरप्रकारेण विजयोद्यमेषु ।
 मुखान्यभूवन्द्रविडाङ्गनानामुच्छोऽङ्गानिःश्वासविधुसराणि ॥६५॥

तस्मिन्विरुद्धे गिरिनिर्भराम्बु

श्रमातिरेकात्पशुवन्निपीय ।

मातेति चोलः क्षितिमादिभर्ता

कृत्वा स्तनास्वादमिवोत्ससर्ज ॥६६॥

स मालवेन्दुं शरणं प्रविष्टमकण्टके स्थापयतिस्म राज्ये ।

कन्याप्रदानच्छलतः क्षितीशाः सर्वस्वदानं बहवोस्यचक्रुः ॥ ६७ ॥

त्रिलोकवीरः कियतो विजिग्ये न दुर्दमानां प्रतिपार्थिवानाम् ।

दोर्विक्रमेणाद्भुतसाहसेन महाहवानाहवमल्लसूनुः ॥ ६८ ॥

उत्कंधरानेव रणाङ्गणेषु यस्यातितुङ्गस्य हठात्प्रहर्तुः ।

न नमूभावादपरो नृपाणामासीत्कृपाणप्रतिषेधमार्गः ॥ ६९ ॥

व्याजावतीर्णेन जनार्दनेन तेनोदरे हाररुचिच्छटाभिः ।

नाभीसरोजोद्गमवारणाय संचारिता चन्द्रमसः प्रभेव ॥ ७० ॥

✓ न भोजराजः कविरञ्जनाय मुञ्जजोयवा कुञ्जरदानदत्तः ।

हस्ताम्बुजे तस्य गुणिप्रियस्य सहर्षमाविष्कृतहेमवर्षे ॥ ७१ ॥

तस्यारिलक्ष्मीपरिरम्भकेलिसमुत्सुकप्राज्यभुजद्वयस्य ।

केयूररत्नाङ्कुरकण्टकानां तैदृश्यं कृपाणाहतिभिर्निरस्तम् ॥ ७२ ॥

एकातपत्रोर्जितराज्यलोभाच्छत्रान्तराणामिव वारणाय ।

स भूभृतामुन्नतवंशभाजां दण्डानशेषाञ्छतधा बभञ्ज ॥ ७३ ॥

गायन्तिस्म गृहीतगौडविजयस्तम्बेरमस्यावहे हवे

तस्योन्मूलितकामरूपनृपतिप्राज्यप्रतापश्रियः

भानुस्यन्दनचक्रघोषमुषितप्रत्यूषनिद्रारसाः ।

पूर्वाद्रेः कटकेषु सिद्धवनिताः प्रालेयशुद्धं यशः ॥ ७४ ॥

आसीत्तस्य समुत्सुकः सुरपतिः संग्रामसंदर्शने

सेहे किंतु न गाढपीडितधनुष्टंकारमुच्चैः श्रवाः ।

आरूढः सुरवारणं रणरसक्रुद्धेभगन्धग्रहा-

तेनाप्येषः प्रलायनप्रखधिवत् दूरं समुत्सारितः ॥ ७५ ॥

काञ्ची पदातिभिरमुष्य विलुण्ठिताभू.

द्वेवालयध्वजपटावलिमात्रशेषा ।

लुण्ठाकलुप्तनिखिलाम्बरडम्बराणां

कौपीनकार्पणपरेव पुराङ्गनानाम् ॥ ७६ ॥

अत्र द्रावितभूमिपालदलनक्रीडारसोत्थे रणे

कोदण्डध्वनिभिर्विधुन्वति घनध्वानानुकारैर्जगत् ।

वैदेहीरमणस्य रावणशिरश्छेदेष्यशान्तक्रुधः

प्रत्यावृत्तिरकाण्डकम्पतरलैराशङ्किलङ्काचरैः ॥ ७७ ॥

इति श्रीविक्रमाङ्कदेवचरिते महाकाव्ये त्रिभुवनमल्लदेवविद्यापति-

काश्मीरकमहविल्हणविरचिते तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥



कार्यतो युवराजत्वे राजमूनुरवस्थितः ।
 स दिग्विजयमव्याजवीरः स्मर इवाकरोत् ॥ १ ॥
 अभज्यन्त गजैस्तस्य लीलया मलयदुमाः ।
 समं केरलकान्तानां चूर्णकुन्तलवल्लिभिः ॥ २ ॥
 मदस्तम्बेरमैस्तस्य मलये निर्दुमीकृते ।
 मन्ये चन्दनवायूनामभूद्दुर्भिक्षमक्षयम् ॥ ३ ॥
 चन्दनस्यन्दडिण्डीरच्छलेन मलयाचलः ।
 पिण्डं श्रीखण्डवृक्षाणां परोक्षाणामिवाकरोत् ॥ ४ ॥
 सान्द्रचन्दननिस्यन्दपङ्क्तिस्तस्य वारणैः ।
 क्षणमौर्वाग्निसंतापः प्रविश्य शमितोम्बुधेः ॥ ५ ॥
 और्वाग्नितप्तपाथोधौ चन्दनस्यन्दवासिताः ।
 शीतोपचारसाम्राज्यं भेजुर्मलयनिम्नगाः ॥ ६ ॥
 सखीव निखिलैस्तस्य सेना सीमन्तिनीजनैः ।
 प्रीत्या मलयवायूनां जन्मभूमिरदृश्यत ॥ ७ ॥
 मलयेन तदीयस्त्रीसुरभिश्चसितानिलैः ।
 गुहाश्चन्दनवायूनां बीजार्थमिव पूरिताः ॥ ८ ॥
 गजोन्मूलितनित्तिप्तचन्दनदुमसंपदः ।
 स मूल्यमिव रत्नानि जग्राह महतोम्बुधेः ॥ ९ ॥
 शिलाभिः करटिक्वणश्रीखण्डस्यन्दपाण्डुभिः ।
 मलयस्तद्वलक्षोभादस्थिशेष इवाभवत् ॥ १० ॥
 अम्भोधिः श्रीभुजंगस्य निद्राभङ्गविधायिना ।
 चमूकलकलेनेव कुपितः क्षोभमाययौ ॥ ११ ॥
 क्षुण्णास्तत्करिभिस्तोयद्विपाङ्घ्रिनिगडोयमाः ।
 शयानाः कुण्डलीभूय वार्धितीरे महोरगाः ॥ १२ ॥
 दधिरे तद्वजाः पादलग्नपाथोधिमौक्तिकाः ।
 क्षुण्णनिक्षिप्तपुष्पैस्तस्य सौन्दर्यं सुरदन्तिनः ॥ १४ ॥

तस्य वाहनमेकैकं गाहमानमन्यत ।
 मन्दुरास्मरणायातमुच्चैः श्रवसमम्बुधिः ॥ १४ ॥
 तद्वन्तिपदसंघट्टत्रुटन्मौक्तिकशुक्तिकः ।
 चक्रम्बुधिर्भयोद्भ्रान्तहृदयस्फुटनभ्रमम् ॥ १५ ॥
 अन्विष्यन्मरणोपायं दुःखात्तत्सैन्यलुरिठतः ।
 कालकूटं हरग्रस्तं शुशोच पयसां निधिः ॥ १६ ॥
 विद्रुमेषु समुद्रस्य कान्ताबिम्बौष्ठकान्तिषु ।
 अराजनराजपुत्रस्य प्रीतिपात्रीकृता दृशः ॥ १७ ॥
 तेन केरलभूपालकीलालकलुषीकृतः ।
 अगस्त्यमुनिसन्त्रासमत्याज्यत पयोनिधिः ॥ १८ ॥
 उदरालोडनाद्भ्रान्तदन्तसंक्रान्तपन्नगैः ।
 पाथोधेरन्त्रमालेव तद्वन्तिभिरकृष्यत ॥ १९ ॥
 तद्भयात्सिंहलद्वीपभूपतिः शरणागतः ।
 विश्रामाश्रमपदे लोपामुद्रापतेर्मुनेः ॥ २० ॥
 धुनानेन धनुश्चित्रं कृतास्तेन मुखेन्दवः ।
 गाङ्गकुण्डपुरस्त्रीणां गलत्कुण्डलमण्डलाः ॥ २१ ॥
 यशः कूर्चिकया चित्रं दिग्भित्तिषु निविष्टया ।
 द्रविडीगण्डफलके तेनावर्त्यत पाण्डिमा ॥ २२ ॥
 गलितोत्तुङ्गशृङ्गत्वाद्द्विषां तेन जिगीषुणा ।
 अपि लूनशिरस्केव राजधानी व्यधीयत ॥ २३ ॥
 तत्प्रतापमवोचन्त वस्त्रैर्विगलदश्रुभिः ।
 पुरन्ध्रयो नरेन्द्राणां जलार्द्रासमतां गतैः ॥ २४ ॥
 चोलान्तः पुरगेहेषु सिंहानां तस्य बाहुना ।
 लोल लाङ्गूलदण्डानां द्वाररक्षा समर्पिता ॥ २५ ॥
 चिन्तया दुर्बलं देहं द्रविडो यत्पलायितः ।
 संकटाद्रिदरीद्वारप्रवेशे ब्रह्ममन्यत ॥ २६ ॥

दृश्यन्तेद्यापि तद्गीतिविदुतानां दुमालिषु ।
 अलिकाश्चोलकान्तानां कर्पूरतिलकाङ्किताः ॥२७॥
 क्षणाद्विगलितानर्घ्यपदार्था द्रविडक्षितेः ।
 प्राकारसूत्रशेषाभूत्काञ्ची तद्बाहुकम्पिता ॥२८॥
 तेनानास्पदमात्मीयप्रतापोत्कर्षरागिणा ।
 चक्रेनङ्गप्रतापस्य चेद्भिभूपाङ्गनाजनः ॥२९॥
 आक्रान्तरिपुचक्रेण चक्रकोटपतेः परम् ।
 लिखिताश्चित्रशालासु तेनामुच्यन्त दन्तिनः ॥ ३० ॥
 कृतकार्यः परावृत्य कियत्यप्यध्वनि स्थितः ।
 अथ गम्यत्वमरतेरकस्मादेव सोगमत् ॥ ३१ ॥
 स शङ्कातङ्कमासाद्य स्फुरणाद्वामचक्षुषः ।
 श्रेयोस्तु तातपादानामिति सास्रमवोचत ॥ ३२ ॥
 अदृश्यैः कैश्चिदागत्य चिन्तया शून्यचेतसः ।
 तस्यामङ्गलवार्तेव कापि कर्णे न्यधीयत ॥ ३३ ॥
 शुभाशुभानि वस्तूनि संमुखानि शरीरिणाम् ।
 प्रतिबिम्बमिवायान्ति पूर्वमेवान्तरात्मनि ॥ ३४ ॥
 अवगाहितनिःशेषशास्त्रनिर्मलधीरपि ।
 अकारणमसौ प्राप्तः कुमारो यदधीरताम् ॥ ३५ ॥
 सर्वस्वदानमालोच्य दुर्निमित्तप्रशान्तये ।
 अग्रयाणमसौ चक्रे ततः कृष्णनदीतटे ॥ ३६ ॥
 स तत्क्षणात्परिम्लानमुखं संमुखपातिनम् ।
 ददर्श राजधानीतः प्रधानं दूतमागतम् ॥३७॥
 अप्रियावेदने जिह्वामवगम्य पराङ्मुखीम् ।
 कथयन्तमिवानर्थं आसैरत्यर्थमायतैः ॥ ३८ ॥
 निर्यद्भिरतिमात्रोष्णैर्मुखैर्निःश्वासवायुभिः ।
 निवेदयन्तं दुर्गन्तं वज्रमलमुपस्थितम् ॥ ३९ ॥

ककुभां भर्तृभक्तानां पृच्छतीनां नृपस्थितिम् ।
 विद्वन्तमिवाभान्तमत्यन्तत्वरितैः पदैः ॥ ४० ॥
 अनर्थवार्त्तावहनमहापातकदूषितम् ।
 गणयित्वेव धैर्येण सर्वथापि निराकृतम् ॥ ४१ ॥
 कृतप्रणाममासन्नमथ तं राजनन्दनः ।
 कुशलं तातपादानामिति पप्रच्छ वत्सलः ॥ ४२ ॥
 उपविश्य शनैः पार्श्वे स निरुत्साहया गिरा ।
 कथयामास नासाग्रविलुठद्वाष्पशीकरः ॥ ४३ ॥
 विधेहि दृढमात्मानं मावधीरय धीरताम् ।
 कुमार व्यापिपत्येष दुर्वार्त्ताप्रलयाम्बुदः ॥ ४४ ॥
 आपारदुपाण्ड्यमालोलचोलमाक्रान्तसिंहलम् ।
 देवस्त्वद्विजयं श्रुत्वा भेजे सुखमयीं स्थितिम् ॥ ४५ ॥
 अकारणं विधिचारडालस्तस्मै दाहज्वरं ददौ ।
 न कैश्चिदपि लभ्यन्ते निष्कम्पाः सुखसंपदः ॥ ४६ ॥
 अपरिश्रान्तसन्तापश्चन्दनालेपनेन सः ।
 त्वदङ्कपालीपेयूषमाचकाङ्क्ष पुनः पुनः ॥ ४७ ॥
 क्रमादर्थप्रबुद्धानि शिशिक्षे वीक्षितानि सः ।
 वासवस्येव दूतेषु कुर्वन्गजनिमीलिकाम् ॥ ४८ ॥
 अन्तर्दाहमवालोक्ष प्रियां कीर्तिं विनिर्गताम् ।
 दर्शयन्दशनज्योत्स्नामथोवाच स मन्त्रिणः ॥ ४९ ॥
 क्षिप्ता मुकुटमाणिक्यपट्टिकासु महीभुजाम् ।
 टङ्केनेव प्रतापेन निजाज्ञाक्षरमालिका ॥ ५० ॥
 दिग्भित्तयः शरश्रेणिकृतच्छिद्रपरंपराः ।
 स्वयशोराजहंसस्य प्रापिताः पञ्जरश्रियम् ॥ ५१ ॥
 अदरिद्रीकृता भूमिर्विमुद्राभिर्विभूतिभिः ।
 नीताः कुलवधुसाम्यं साधूनां वेश्मसु श्रियः ॥ ५२ ॥

प्राप्तः कोदण्डपाण्डित्यजातलक्ष्मीसमागमः ।

काकुत्स्थनिविडस्थामा सूनुर्विक्रमलाञ्छनः ॥५३॥

तेनैव युवराजत्वं समारोप्य यशस्विना ।

एष साम्राज्यभारस्य वोढा सोमेश्वरः कृतः ॥५४॥

इति मे कृतकृत्यस्य माहेश्वरशिरोमणेः ।

गिरिजानाथनगरे समारोहणमुत्सवः ॥५५॥

आत्मानमुन्मदद्वाःस्थगलहस्तितसेवकाः ।

अगम्यमपि दैवस्य विदन्ति हतपार्थिवाः ॥५६॥

मम शुद्धे कुले जन्म चालुक्यवसुधासृताम् ।

क्रियत्योपि गताः ओन्नमैत्रीं शास्त्रार्थविप्रुषः ॥५७॥

जानामि करिकर्णान्तचञ्चलं हतजीवितम् ।

मम नान्यत्र विश्वासः पार्वतीजीवितेश्वरात् ॥५८॥

उत्सङ्गे तुङ्गभद्रायास्तदेष शिवचिन्तया ।

वाञ्छाम्यहं निराकर्तुं देहग्रहविडम्बनाम् ॥५९॥

यातोयमुपकाराय कायः श्रीकण्ठसेवया ।

कृतघ्नव्रतमेतस्य यत्र तत्र विसर्जनम् ॥६०॥

तथेति वचनं राज्ञः प्रत्यपद्यन्त मन्त्रिणः ।

उचिताचरणे केषां नोत्साहचतुरं मनः ॥६१॥

ततः कतिपयैरेव प्रयाणैः प्रणयिप्रियः ।

तां क्षोणीपतिरद्राक्षीदृक्षिणापथजाहूवीम् ॥६२॥

तुङ्गभद्रा नरेन्द्रेण तेनामन्यत मानिना ।

तरङ्गहस्तैरुत्क्षिप्य क्षिपन्तीवेन्द्रमन्दिरे ॥६३॥

उद्दण्डा तेन डिण्डीरे पिण्डपंक्तिरदृश्यत ।

विमानहंसमालेव प्रहिताः पद्मसद्मना ॥६४॥

अतिदूरं समुत्प्लुत्य निपतद्भिः स शीकरैः ।

अराजतधरावन्ध्रप्रत्युत्पन्न इव ग्रहेः ॥६५॥

तत्रावतीर्य धौरेयो धीराणां धरणीपतिः ।
 स्नात्वा चण्डीशचरणद्वन्द्वचिन्तापरोभवत् ॥६६॥
 अदत्त चापरिच्छिन्नमखिन्नः काञ्चनोत्करम् ।
 न कृच्छ्रेपि महाभागास्त्यागव्रतपराङ्मुखाः ॥६७॥
 प्रविश्य कण्ठदघ्नेन सरित्तोये जगाम सः ।
 कल्लोलतूर्यनिर्घोषैश्चन्द्रचूडामणोः पुरीम् ॥६८॥
 इत्युक्त्वा विरते तत्र कृतनेत्राम्बुदुर्दिनः ।
 हृतासिधेनुः पार्श्वस्थैः साक्रन्दगलकन्दलः ॥६९॥
 स्वभावादार्यभावेन पितृस्नेहाच्च तादृशः
 तथा रुरोद वपुषा भूपृष्ठलुठितेन सः ॥७०॥
 एवंविधदुराचारगृहीतनियमं यमम् ।
 मन्यतेस्म यथा वंशे तिरमांशुरपि कण्टकम् ॥७१॥
 एतद्दुःखानभिज्ञेभ्यो दिनेभ्यः स्पृहयन्मुहुः ।
 दिवसोपि यथात्मानं मन्दभाग्यममन्यत ॥७२॥
 अथ कालकलाः स्थित्वा क्रियतीरप्यसौ तथा ।
 अचिन्तयदविश्रान्तवाष्पसंतानदुर्दिनः ॥७३॥
 तवादिकूर्मं कर्माणि निषेधन्ति सुखस्थितिम् ।
 प्रयाहि शेष निष्पेषादस्थिपञ्जरशेषताम् ॥७४॥
 दिग्गजास्त्यजत स्वैरक्रीडाविहरणादरम् ।
 संभूय भूयः सर्वेपि धारयन्तु धरामिमाम् ॥७५॥
 बाहुराहवमल्लस्य सुवर्णस्तम्भविभ्रमः ।
 पुरंदरधुरां धर्तुं धात्रा व्यवहितः कृतः ॥७६॥
 निजासु राजधानीषु स्थितिं दधतु पार्थिवाः ।
 तादृशः पुनरुत्साहो वीरसिंहासने कुतः ॥७७॥
 तद्बाहुदण्डविश्लेषे किं पौरुष करिष्यसि ।
 प्रतिपालकवैधुर्यात्प्रतापं परितप्यसे ॥७८॥

पद्मे पद्माकरानैव पुनः सद्मात्वमानय ।
 अयं त्वया पतिभ्रंशसंतापोन्यत्र दुःसहः ॥७९॥
 श्लाघ्यःशेषफणाचकूटिङ्कात्पतनं भुवः ।
 अथवा स्नेहपाण्डित्यं मृत्पिण्डस्येदृशं कुतः ॥८०॥
 अपूर्वः कोपि दुर्मैधाः शङ्के वेधाः समुत्थितः ।
 पुराणक्लेशनिष्पन्नां स्वकृतिं नाशयेत्कथम् ॥८१॥
 अहो शौर्यमहो धैर्यं चित्रं गाम्भीर्यविभ्रमाः ।
 यत्सत्यं क्वचिदेकत्र गुणास्ते दुर्लभाः पुनः ॥८२॥
 कुण्ठीकृतारिशस्त्रस्य तस्य वज्रोपमाकृतेः ।
 भाग्यानामेव मे दोषादेष जातः परित्यजः ॥८३॥

पाठान्तरम्

मद्भाग्यदोषादेवैष जाने जातः परित्यजः ।
 विधास्यति कथं धाता सर्गरत्नं तथाविधम् ।
 कथं वा संधटिष्यन्ते तादृशाः परमाणवः ॥८४॥
 प्रधावत्संमुखानेकवाहिनीगाहनक्षमः ।
 अम्भोधिरिव दुष्प्रापः सत्त्वरशिस्तथाविधः ॥८५॥
 आर्येण सौकुमार्यैकभाजनेन हहा कथम् ।
 अयं विषादवज्राग्निरसह्य न मया विना ॥८६॥
 साक्रन्दमिति चान्यच्च स संविन्त्य पुनः पुनः ।
 शनैर्विवेकदीपेन पन्थानं प्रत्यपद्यत ॥८७॥
 यथाविधि विधायाथ सस्थितस्य पितुः क्रियाम् ।
 अग्रजालोकनोत्कण्ठाप्रेषितः सोचलत्पुरः ॥ ८८ ॥
 कियद्भिरपि सोध्वानमुल्लङ्घ्य दिवसैस्ततः ।
 निःशब्दसैन्यसङ्घातसहितः प्राविशत्पुरीम् ॥ ८९ ॥
 सरोजिनीव हंसेन नयेनेव नरेन्द्रता ।
 कविना सुखगोष्ठाव चन्द्रणव विभावरी ॥ ९० ॥

लक्ष्मीरिव प्रदानेन कवित्वेनेव वाग्मिता ।
 मेने तेनापवित्रेव पित्रा विरहिता पुरी ॥ ९१ ॥ युगलकम्
 अग्रे समागतेनाथ मानितः सोयजन्मना ।
 सह तेनैव सकलेशं विवेश नृपमन्दिरम् ॥ ९२ ॥
 अन्योन्यकण्ठाश्लेषेण पीडितस्थेव निर्ययुः ।
 वाष्पाम्भसस्तयोर्धाराश्चिरं तत्रातिमांसलाः ॥ ९३ ॥
 क्रमात्ताभ्यामदुःखाभ्यामन्योन्यस्नेहवृत्तिभिः ।
 केपि कैतववाह्याभिरत्यवाह्यन्त वासराः ॥ ९४ ॥
 ज्येष्ठं गुणैर्गरिष्ठोपि पितुस्तुल्यममंस्त सः ।
 महात्मनाममार्गेण न भवन्ति प्रवृत्तयः ॥ ९५ ॥
 स दिग्वलयमालोड्य वस्तुजातमुपार्जितम् ।
 तस्मै समर्पयामास नास्ति लोभो यशस्विनाम् ॥ ९६ ॥
जातः पापरतः कैश्चिद्विनैः सोमेश्वरसत्ततः ।
 एषा भगवती केन भज्यते भवितव्यता ॥ ९७ ॥
 मदरेव नरेन्द्रश्रीस्तस्याभून्मदकारणम् ।
 न विवेद परिभ्रष्टं यदशेषं यशोशुकम् ॥ ९८ ॥
 बाधिर्यमिव मङ्गल्यतूर्यध्वनिभिरागतः ।
 ईषदप्येष नाश्रौषीद्वचनानि महात्मनाम् ॥ ९९ ॥
 कुर्वन्नङ्गेषु वैक्लव्यमाविष्कृतमदज्वरः ।
 स निनाय श्रियं राजा राजयत्मेव संक्षयम् ॥ १०० ॥
 अपास्तकुन्तलोह्लासा वैराग्यं दधती धरा ।
 जीवत्येव धवे तस्मिन् विधवेव व्यराजत ॥ १०१ ॥
 चक्रस्तम्बेरमाः पृष्ठे तदारोहणदूषिते ।
 अभ्युक्ष्णमिवोदस्तहस्तशीकरवारिभिः ॥ १०२ ॥
 पालैर्दिव्यमिवागृह्णन्मण्डलभ्रमणोद्यताः ।
 अयोग्यतां साधयितुं तस्य सेनातुरंगमाः ॥ १०३ ॥

अत्र तृतीया दुःसमा-
 चाना । अत्र चर्चा-
 रन् नास्ति ।
 अथ कल्पयितुं
 चालायेति
 विवक्ष्यति ।

स जातु जातुषीं मेने मन्ये नरपतिश्रियम् ।
 एतद्गलनभीत्येव क्षात्रं तेजो यदत्यजत् ॥ १०४ ॥
 जातास्वादः स्वयं लक्ष्म्याः पिशाच्या इव चुम्बनात् ।
 रुधिरं कण्ठरन्ध्रेभ्यः सर्वेषामाचकाङ्क्ष सः ॥ १०५ ॥
 उद्धूतचामरोद्दामसमीरासङ्गिनेव सः ।
 रजसा पूर्यमाणोभून्मार्गं द्रष्टुमनीश्वरः ॥ १०६ ॥
 तेजोनिधीनां रत्नानां संभारं धारयन्नपि ।
 बभूव दैवोपहतस्तमःस्तोमैस्तिरोहितः ॥ १०७ ॥
 उपरि प्रतिबन्धेन ध्यात्वेव नमतोखिलान् ।
 अधोगमनमेवासौ विह्वलो बह्वमन्यत ॥ १०८ ॥
 पिशाच इव सर्वेषां क्लान्वेषणतत्परः ।
 नासौ किमपि कर्तव्यं विवेद मदमूर्च्छया ॥ १०९ ॥
 व्यरज्यत समस्तोपि लोभैकवसतेर्जनः ।
 त्यागो हि नाम भूपानां विश्वसंवन्नौषधम् ॥ ११० ॥
 अकार्येपि कुमारस्य तात्पर्यमतनोदसौ ।
 किं लक्ष्मीसुखमुग्धानामसंभाव्यं दुरात्मनाम् ॥ १११ ॥
 भ्रमयन्ङ्कुशं दर्पाद्द्विपेन्द्रमधिरुह्य सः ।
 अख्यातिवीजवापाय चखानेव नभःस्थलीम् ॥ ११२ ॥
 बहुना किं प्रलापेन तथा राज्यं चकार सः ।
 यथेन्दुमित्रे चालुक्यगोत्रे प्राप कलङ्कताम् ॥ ११३ ॥
 न शशाक निराकर्तुमग्रजस्य दुराग्रहम् ।
 राज्यग्रहगृहीतानां को मन्त्रः किं च भेषजम् ॥ ११४ ॥
 अचिन्तयच्च किं कार्यं विपर्यस्तधियामुना ।
 अकीर्तिसंविभागस्य गमिष्याम्यत्र पात्रताम् ॥ ११५ ॥
 त्यागमेव प्रशंसन्ति गुरोरुत्पथगामिनः ।
 तदितः साधयाम्येष दक्षिणामुधिसंमुखः ॥ ११६ ॥

मया निपीड्यमानास्ते निविडं द्रविडादयः ।

आर्यं विपर्यस्तमपि प्रभवन्ति न बाधितुम् ॥ ११७ ॥

इति स मनसा निश्चित्यार्थं चुलुक्यशिखामणिः

अवणसरणिं भिन्दन्भेरीरवेण विनिर्ययौ ।

अपि च कुपितः दमाभृत्सेनागजेषु निजेषुभिः

कतिषु विदधे धैर्यध्वंसं न साहसलान्छनः ॥ ११८ ॥

प्रत्यक्ता मधुनेव कामनमही मौर्वीव चापोज्झिता

शुक्तिमौक्तिकवर्जितेव कविता माधुर्यहीनेव च ।

तेनैकेन निराकृता न शुशुभे चालुक्यराज्यस्थितिः

सामर्थ्यं शुभजन्मनां कथयितुं कस्यास्ति वाग्विस्तरः ॥ ११९ ॥

इति श्रीविक्रमांकदेवचरिते महाकाव्ये त्रिभुवनमल्लदेवविद्यापति—

काश्मीरकमट्टविल्हणविरचिते चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥



नैष दुर्मतिरिमं सहिष्यते राज्यकण्टकविशोधनोद्यतः ।
अग्रजादिति विशङ्क्य संकटं सिंहदेवमनुजं निनाय सः ॥ १ ॥
गुप्तभूषणरवेव सर्वतस्तूर्यमङ्गलनिनादशान्तितः ।
श्रीरलक्ष्यत विलक्षचेतसा तस्य पृष्ठचलितेव भूभुजा ॥ २ ॥
अङ्गवर्तिनमशङ्कमाः कथं हन्तुमेनमुपरुद्धवानिति ।
तल्पनिलुठनशीर्णचन्दनः पर्यतप्यत विभावरीषु सः ॥ ३ ॥
तस्य मग्नमवनीपतेर्मनस्त्रासपङ्कपटले पटीयसि ।
भूरिसंख्यभरकर्षणक्षमैरप्यकृष्यत न मत्तदन्तिभिः ॥ ४ ॥
स व्यसर्जयदथ कथन्मनाः पुष्कलं बलममुष्य पृष्ठतः ।
किं न संभवति चर्मचक्षुषां कर्म लुब्धमनसामसात्त्विकम् ॥ ५ ॥
प्राप्तमप्यनयपङ्कशङ्कितस्तद्वलं न सहसा जघान सः ।
अप्रतर्क्यभुजवीर्यशालिनः संकटेप्यगहनास्तथाविधाः ॥ ६ ॥
अन्तकः प्रतिभटक्षमाभृतां निर्दयग्रहणनोद्यतं ततः ।
तन्मदद्विरदपादचूर्णितं सैन्यमेककवलं चकार सः ॥ ७ ॥
किं बहुप्रलपितैः पुनः पुनः प्रत्यनीकपृतनाः समागताः ।
कालवक्त्रकुहरे निवेश्य स स्वाङ्गशेषमकरोन्महीपतिम् ॥ ८ ॥
राजहंसमिव बाहुपञ्जरे श्रीविलासभुवि लालयन्त्यशः ।
तत्र तामरसपत्रलोचनश्चित्रमभ्युदयमाससाद सः ॥ ९ ॥
मन्युपङ्ककलुषं समुद्रहन्भ्रातृदुश्चरितचिन्तनान्मनः ।
सुप्रसन्नपयसा प्रसन्नतां द्रागनीयत स तुङ्गभद्रया ॥ १० ॥
तत्करीन्द्रनिवहावगाहनैर्वाहिनी पतिपथेन सागमत् ।
दन्तिदानजलनिम्नगाः पुनर्लेभिरे प्रणयमापगापतेः ॥ ११ ॥
वारणः प्रतिगजं विलोकयंस्तद्विमर्दरसमांसलरूपहः ।
आददे न विशदं नदीजलं शीलमीदृशममर्षशालिनाम् ॥ १२ ॥
षट्पदध्वनिभिराकुलीकृतः पातुमैच्छदुदकं न कुञ्जरः ।
तान्प्रविश्य प्रयसि न्यपीडयद् दूषणं हि भुवनेष्वमर्षिनाम् ॥ १३ ॥

अत्यजत्प्रतिगजं मतङ्गजः पार्श्वसंगतकरेणुलोभतः ।
 यत्र तत्र भुजदण्डचण्डिमा चित्रमप्रतिहतो मनोभुवः ॥१४॥
 रुद्धवर्त्मसु गजेषु वाजिनः प्रापुरम्भसि निमज्जनं चिरात् ।
 लब्धतीरतरुकण्टकैः पुनर्नेक्षितापि तटिनी क्रमेलकैः ॥१५॥
 अस्मरद्द्विरददानवारिणा तेन वारिनिधिराविलीकृतः ।
 हन्त संततमदस्य विश्रमानभ्रमुप्रियतमस्य दन्तिनः ॥१६॥
 स्नानसक्तपरिवारसुन्दरीवृन्दमध्यमवधीरिताङ्कुशः ।
 यज्जगाम मदलङ्घितः करी भाग्यसंपदुपरि स्थितस्य सा ॥१७॥
 तां विधाय कतिचिद्दिनानि स प्रेयसीघुसृणपङ्क्तिं नदीम् ।
 चोलसंमुखमगाहताहवप्राप्तिदुर्ललितबाहुराग्रहम् ॥१८॥
 केलिकाननशकुन्तकूजितच्छाद्यमानगलकन्दलस्वनाः ।
 प्राप्नुवन्ति न विदग्धतागुणं यत्र दर्शयितुमेणलोचनाः ॥१९॥
 यत्र तिष्ठति विरोधमुद्ब्रह्मदाहतः प्रभृति तेजसा सह ।
 मेचकक्रमुककाननावलीमीलितोष्णकिरणार्चिषि स्मरः ॥२०॥
 यत्र मारुतविधूतकेतकव्रातधूलिधवलासु भूमिषु ।
 कामिनीशरणमाश्रिते स्मरे भर्गवन्निहरिव भस्मसादभूत् ॥२१॥
 नारिकेलफलखण्डताण्डवक्षुरणतत्कुहरवारिवीचयः ।
 यत्र यान्ति मरुतः स्मरास्त्रंतां धूतपक्वकदलीसमृद्धयः ॥२२॥
 अध्युवास वनवासमण्डलं तद्दिनानि कतिचिन्नुपात्मजः ।
 योषितामुपवनस्थलीभुवः कर्तुमद्भुतविलाससाम्प्रतिणीः ॥२३॥
 उच्चचाल पुरतः शनैरसौ लीलया मलयदेशभूभुजाम् ।
 पूर्वदर्शितपराक्रमस्मृतिं सैन्यतूर्यनिनदैः प्रबोधयन् ॥२४॥
 एनमेत्य जयकेशिपार्थिवः प्रार्थितादधिकमर्पयन्धनम् ।
 निश्चलामकृत हासचन्द्रिकां कौङ्कणप्रणयिनीमुखेन्दुषु ॥२५॥

आलुपेन्द्रमवदातविक्रमस्त्यक्तचापलमसावर्धयत् ।
 दीपयत्यविनयाग्रदूतिका कोपमप्रणतिरेव तादृशाम् ॥२६॥
 व्यापृतैरविरतं शिलीमुखैः केरलक्षितिपवामचक्षुषाम् ।
 पूर्वकल्पितमसावदर्शयद्गण्डपालिषु निवासमश्रुणः ॥२७॥
 तं विभाव्य रभसादुपागतं दमाभुजंगमुपजातसाध्वसा ।
 लोलवारिनिधिनीलकुण्डला द्राविडक्षितिपभूरकम्पत ॥२८॥
 तस्य सज्जधनुषः प्रतिक्रियाशून्यपौरुषविशेषशालिनः ।
 द्राविडेन्द्रपुरुषस्ततः सभामाजगाम नयमार्गकोविदः ॥२९॥
 मौलिचुम्बितवसुंधरातलः कुन्तलेन्द्रतनयं प्रणम्य सः ।
 व्याजहार दशनंशुपल्लवन्यस्तकोमलपदां सरस्वतीम् ॥३०॥
 कश्चुलुक्चन्द्रपवंशमंडन त्वद्गुणान्गणयितुं प्रगल्भते ।
 धाम पङ्कुरुहिणीविलासिनः कस्य संकलयितुं विदग्धता ॥३१॥
 वर्णयामि विमलत्वमम्भसः किं त्वदीयकरवालवर्तिनः ।
 एति यत्प्रभवमैन्दवीं द्युतिं विश्वशुक्तिपुटमौक्तिकं यशः ॥३२॥
 खड्गवारि भवतः किमुच्यते लोलशैवलमिवारिकुन्तलैः ।
 तत्र राजति निवेशितं त्वया राजहंसनिवहोपमं यशः ॥३३॥
 त्वद्भुजप्रणयिचापनिस्वनः कैरसौ समरसीम्नि सञ्च्यते ।
 व्यक्तिमेति रिपुमन्दिरेषु यः क्रन्दितध्वनिभिरेणचक्षुषाम् ॥३४॥
 निर्मदत्वमुपयान्ति हन्त ते ज्यारवैः करटिनो दिशामपि ।
 कश्मलैः परिहृता इवालिभिर्यद्भजन्ति ककुभः प्रसन्नताम् ॥३५॥
 त्वादृशेन विजिगीषुणा विना क्षत्रमक्षममसाध्यसाधने ।
 प्लावनाय जगतः प्रगल्भते नो युगान्तसमयं विनाम्बुधिः ॥३६॥
 अग्रजे तृणवदर्पितं निजं राज्यमूर्जितगुणेन यत्त्वया ।
 वज्रलेपघटितेव तेन ते निश्चला जगति कीर्तिचन्द्रिका ॥३७॥
 किं करोषि निजयाथवा भुवा त्वं समस्तवसुधातलेश्वरः ।
 केसरी वसति यत्र भूधरे तत्र याति मृगराजतामसौ ॥३८॥

याति पुण्यफलपात्रतामसौ यां भुवं निवससे महाभट ।
 सा कुपार्थिवकदर्थनोज्झिता त्वां पतिं हि लभते गुणोज्ज्वलम् ॥३९॥
 त्वद्विया गिरिगुहाश्रयेः स्थिताः साहसार्ङ्ग गलितत्रपा नृपाः ।
 ज्यारवप्रतिरवेण तानपि त्वद्भुजः समरसीम्नि बाधते ॥४०॥
 उत्प्रतापदहनं मुखं वहन्नाहवे त्वदसिरैन्द्रजालिकः ।
 दिव्यमस्तकसमागमं द्विषां लूनमर्त्यशिरसां करोति यत् ॥४१॥
 भाग्यभूमिमपि भारतादिषु त्वादृशं न शृणुमः प्रतापिनम् ।
 दर्शनेन विजयश्रियं रणेष्वन्यसङ्गविमुखीं करोति यः ॥४२॥
 किं किरीटमणयः क्षमाभुजां लोहकर्षकदृषत्सहोदराः ।
 आनयन्ति यदुपान्तवर्त्मनि त्वत्कृपाणमतिदूरवर्तिनम् ॥४३॥
 चोलभूमिपतिरुज्ज्वलैर्गुणैः किं न वक्ति भवतानुरञ्जितः ।
 पश्यतस्तृणसमां तव श्रियं श्रीप्रदानकथनेन लज्जते ॥४४॥
 अन्यपौरुषगुणेष्वपि श्रुतिं प्राप्तवत्सु घनगर्जितेष्विव ।
 राजहंसवनितेव मानसान्नास्य निःसरति तावकी स्तुतिः ॥४५॥
 क्रन्यकां कुलविभूषणं गुणैरद्भुतैस्त्रिभुवनातिशायिनीम् ।
 त्वत्करप्रणयिनीं विधाय स प्राप्तुमिच्छति समस्तवन्द्यताम् ॥४६॥
 तेन तस्य वचनेन चारुणा प्राप कुन्तलपतिः प्रसन्नताम् ।
 तीव्ररोषविषवेगशान्तये भेषजं विनय एव तादृशाम् ॥४७॥
 कीदृशी शशिमुखी भवेदिति स्पृश्यतेस्म हृदये स चिन्तया ।
 कामुकेषु मिषमात्रमीक्षते नित्यकुण्डलितकार्मुकः स्मरः ॥४८॥
 अत्रवीच्च मनसः प्रसन्नतां दन्तकान्तिभिर्दूरीरयन्निव ।
 ओष्ठपृष्ठलुठितस्मिताञ्जलः कुन्तलीनयनपूर्णचन्द्रमाः ॥४९॥
 ईदृशीं सुजनतामजानता कार्मुकेण मुखरत्वमत्र मे ।
 यत्कृतं किमपि तेन लज्जया भारती कथमपि प्रवर्तते ॥५०॥
 दोषजातमवधीर्य मानसे धारयन्ति गुणमेव सज्जनाः ।
 क्षारभावमपनीय गह्वरे वारिधेः सलिलमेव वारिदाः ॥५१॥

दिग्जयव्यसनिना पुनःपुनस्तस्य किं प्रियमनुष्ठितं मया ।
 रज्यते मयि द्रुढं तथाप्यसौ वेत्ति कश्चरितमुन्नतात्मनाम् ॥५२॥
 तस्य भूरिगुणरत्नशालिनः स्नेहपूतहृदयस्य वाञ्छितम् ।
 पारयामि न विधातुमन्यथा यत्स्थितं मनसि तद्विधीयताम् ॥५३॥
 दर्शयन्तममृतद्रवोपमां वाचमिन्दुकरनिर्मलामिति ।
 विक्रमाङ्गमपयातसाध्वसः साधुरेनमथ स व्यजिज्ञपत् ॥५४॥
 किं तवान्यदुचितं वदान्यता यत्समादिशति तत्त्वयाकृतम् ।
 प्रार्थितार्थपरिपन्थितामगात्कश्चुलुक्यकुलपार्थिवोर्थिनाम् ॥५५॥
 वेत्सि मे पतिमवञ्चकं यदि स्वच्छतां स्पृशति चात्र ते मनः ।
 तन्निवृत्य कुरु तुङ्गभद्रया मुद्रिते पदमुपान्तवर्त्मनि ॥५६॥
 कैश्चिदेव सततप्रयाणकैस्तत्र शुद्धहृदयः करिष्यति ।
 स त्वया परिचयं प्रतापिना पर्वशीन्दुरिव तिग्मरश्मिना ॥५७॥
 गाहतेत्र धृतकार्मुके त्वयि प्रीतिदानमपि भीतिदानताम् ।
 तेन तस्य महती विलक्षता यत्र वेत्सि गुणपक्षपातिताम् ॥५८॥
 नाद्य यावदवलोकिता जनैः क्वापि तस्य वचसामसत्यता ।
 मादृशां शुभविपर्ययाद्यदि व्यक्तिमेष्यति भवादृशेषु सा ॥५९॥
 एवमादिभिरनेन बोधितः कोविदेन वचनैः पुनः पुनः ।
 ज्ञातचोलहृदयः स्वयं च स प्राङ्निवेदितमगान्दीतटम् ॥६०॥
 चोलभूमिपतिरप्यनन्तरं निर्जगाम नगरात्कृतोत्सवः ।
 पुष्पसायकपताकया तया कन्यया सह सहासवक्त्रया ॥६१॥
 सन्धिबन्धमवलोक्य निश्चलं तस्य कुन्तलनरेन्द्रसूनुना ।
 शान्तसाध्वसमहारुजः प्रजाः स्वेषु धामसु बबन्धुरादरम् ॥६२॥
 दिग्गजश्रवणभङ्गकारिभिर्दुन्दुभिध्वनिभिरस्य भैरवैः ।
 अभ्रमभ्रमुभुजङ्गडिण्डिमध्वाननिर्भरमिव व्यराजत ॥६३॥
 सर्वतः श्रवणभैरवस्फुरद्दुन्दुभिप्रतिवापदेशतः ।
 सस्वनं स्फुरद्दुन्दुभिप्रतिवापदेशतः दिगन्तमिष्यतः ॥६४॥

कर्णतालपवनोर्मिशीतलैः सिञ्चतिस्म करशीकराम्बुभिः ।
 दिग्गजानिव भयेन मूर्च्छितांस्तस्य वारणपरंपरा पुरः ॥६५॥
 तत्र भूरजसि दूरमुद्रते यन्न दिग्भ्रममधत्त भास्करः ।
 हेतुरत्र रजसां निवारणं कुञ्जरध्वजपटान्तवीजनैः ॥६६॥
 क्षोणिरेणुमिषतः सदाध्वगः स्यन्दने रचयतिस्म भास्करः ।
 पश्चिमाद्रिविषमस्थलीभुवां पूरणार्थमिव संग्रहं मृदः ॥६७॥
 नन्दनदुमनिकुञ्जपुञ्जितैः पांसुभिः कुसुमधूलिवासितैः ।
 चौर्यकेलिशयनोपयोगतस्तुष्यतिस्म सुरपांशुलाजनः ॥६८॥
 वीक्ष्य पुष्पमधु पांसुदूषितं नन्दनं ध्रुवममुच्यतालिभिः ।
 अन्धकारपटलच्छलेन यद्भृङ्गपूरितमिवाभवन्नभः ॥६९॥
 जैत्रवाजिपृतनाखुरक्षतक्षोणिधूलिपटलीभिरध्वसु ।
 तद्वलस्य सुभगत्वभागमत्पूरितानि विषमस्थलान्यपि ॥७०॥
 चेतसोपि दधतीरलङ्घ्यतां लङ्घयद्भिरवटस्थलीभुवः ।
 तस्य वाजिभिरजायत क्षितिभ्रान्तवातहरिणेव सर्वतः ॥७१॥
 तेन सैन्यधनुषां शिलीमुखज्यालताप्रणयिनां विभूतिभिः ।
 तत्र तत्र विजयश्रियः कृते केलिकाननमिव व्यधीयत ॥७२॥
 अप्रयाणरहितैः स पार्थिवः प्राप कैरपि दिनैस्तरङ्गिणीम् ।
 कार्यजातमसमाप्य धीमतां निद्रया परिचयोपि कीदृशः ॥७३॥
 रञ्जितः परिजनोऽस्य शीतलस्वच्छया सपदि तुङ्गभद्रया ।
 आगताः किमपि पृष्ठतस्तु ये पङ्कशेषमलभन्त ते जलम् ॥७४॥
 दक्षिणार्णवतटादुपागतैस्तद्गजैः पिशुनतां गतैरिव ।
 शीघ्रमक्रियत मध्यवर्तिभिः सा प्रतीपगतिरब्धिवल्लभा ॥७५॥
 सिन्धुतीरनिलयानुरोधतस्तत्तथा बलमवाप दीर्घताम् ।
 अन्तरक्षपितरात्रिभिर्जनैः प्राप्यतेऽस्म नृपमन्दिरं यथा ॥ ७६ ॥
 चोलकेलिसलिलावगाहनप्राप्तभूरिघनसारपाण्डुरा ।
 सा हिमाचलविटङ्गनिर्गता जाह्नवीव तटिनी व्यराजत ॥७७॥

तत्र दक्षिणतटे कृतस्थितिः कुन्तलेन्दुरवलोक्य तद्वलम् ।
 बाहुमाहवसहस्रदीक्षितं वन्दते च परिचुम्बतिस्म च ॥ १८ ॥
 द्वाविडोपि नृपतिः कुतूहलाद्वीक्ष्य तत्कटकमुत्कटद्विपम् ।
 राज्यमुद्धृतमनर्थपङ्क्तः कन्यकावितरणादमन्यत ॥ १९ ॥
 प्रेषितैरथ तयोः परस्परं प्रेम्णि योग्यपुरुषैः प्रपञ्चिते ।
 संगमः सकललोकसंमतो जायतेस्म गुरुपुण्ययोरिव ॥ २० ॥
 एष स प्रियतमः श्रियः स्वयं कर्मणा मम शुभेन दर्शितः ।
 इत्युदश्रुनयनः प्रभावतः कुन्तलक्षितिपतेरमंस्त सः ॥ २१ ॥
 पादयोः प्रणतये कृतोद्यमं तं मुदा द्रविडपार्थिवं ततः ।
 विक्रमाङ्कनृपतिर्न्यवर्तयत्तस्य संभ्रमविशेषतोषितः ॥ २२ ॥
 किं करोषि वयसाधिकेन मे क्षिप्यतां शिरसि पादपल्लवः ।
 अद्यजातमपि मूर्ध्नि धार्यते किं न रत्नममलं वयोधिकैः ॥ २३ ॥
 इत्युदीरितवता निरन्तरं तेन हर्षजलपूर्णचक्षुषा ।
 कुन्तलेन्दुरगमन्मुदं परां द्वाविडक्षितिपमालिलिङ्गं च ॥ २४ ॥

अर्धासनप्रणयपूर्णमनोरथोथ
 श्रीकुन्तलेश्वरमवोचत चोलभूपः ।
 प्रत्यादिशन्दशनचन्द्रिकया किरीट-
 रत्नातपं सदसि राजपरंपराणाम् ॥ २५ ॥
 अङ्गानि चन्दनरसादपि शीतलानि
 चन्द्रातपं वमति बाहुरयं यशोभिः ।
 चालुक्यगोत्रतिलकं क्व वसत्यसौ ते
 दुर्वृत्तभूपपरितापगुरुः प्रतापः ॥ २६ ॥
 धैर्यस्य धामनिधिरद्भुतचेष्टितानां
 दृष्टान्तभूरनवधेः करुणारसस्य ।
 त्वं वेधसा विरचितः सकलादिराज—

कन्या विभूषणमियं भुवनत्रयस्य
सिंहासनं विपुलमेतदयं ममात्मा ।

व्यस्तं समस्तमथवा तदिदं गृहाण

पुण्यैर्मम प्रणयमेतु यशःपताका ॥८८॥

कन्यान्तःपुरधानि चैर्यनिधिना माधुर्यधुर्यैः पदै-

रित्यादि द्रविडेश्वरेण निविडप्रेम्णा मुहुर्व्याहतः ।

चोलीनां कुटिलासु कुन्तललतादोलासु लोलां दृशं

देवः सोय विनोदयन्मुदमगाच्चालुक्यविद्याधरः ॥८९॥

इति श्रीविक्रमाङ्कदेवचरिते महाकाव्ये त्रिभुवनमल्लदेवविद्यापति-

काश्मीरकभट्टविल्हणविरचिते पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥



सह विभवभरेण तत्र पुत्रीं गुणनिधये नृपनन्दनाय दत्त्वा ।
 कथमपि परिणेतुरभ्यनुज्ञामथ समवाप्य चचाल चोलराजः ॥१॥
 द्रविडनरपतेरदत्त वित्तं निरवधि कुन्तलनाथनन्दनोपि ।
 यशसि रसिकतामुपागतानां तृणगणना गुह्यरागिणां धनेषु ॥२॥
 मुदितमनसि जातमानसिद्धौ गतवति तत्र गुणैकपक्षपाती ।
 प्रतिपदमुदकगठत क्षितीन्दुः कुसुमसूदूनि मनांसि निर्मलानाम् ॥३॥
 द्रविडपतिकथाद्भुतक्षणेपु क्षितिपतिसूनुरसौ गुणानुरागी ।
 पुलकपरिकरैः कपोलपालीं विपुलमतिः परिपूरयां चकार ॥४॥
 किमिति न गमनान्निवारितोसौ परिचयमेव्यति चक्षुषोः पुनः किम् ।
 इति सुजनशिखामणिः कुमारः किमपि चिरं परिचिन्तयांचकार ॥५॥
 द्रविडनृपतिपुत्रिकां चकार त्रिभुवनदुर्लभसंपदार्पदं सः ।
 प्रणयिषु शुभचेतसां प्रसादः प्रसरति सन्ततिमप्यनुग्रहीतुम् ॥६॥
 रणरभसविलासकौतुकेन स्थितिमथ बिभ्रदसौ यशोवतंताम् ।
 विधिहतकदुराग्रहादकाण्डे गतमश्रुणोद् द्रविडेन्द्रमिन्द्रधाम्नि ॥७॥
 मृदुहृदयतया गुणानुरागादतिमहतः प्रणयाच्च राजपुत्रः ।
 हिमकरकरकाण्डपाण्डुगण्डस्थलजलदश्रुजलश्चिरं ललाप ॥८॥
 द्रविडविषयराज्यविप्लवेन श्रवणपथातिथिना ततः सखेदः ।
 अभिजनवति चोलराजपुत्रे श्रियमभिषेक्तुमसौ समुच्चचाल ॥९॥
 करटिशतविकीर्णकर्णतालव्यजनसमीरणशीतलीकृतानि ।
 अथ धरणिभुजां पिबन्यशांसि क्षितिपतिरादिपुरीमवाप काञ्चीम् १०
 समजनि कलमेखलाकलापध्वनिजयडिण्डिमसज्जपुष्पचापम् ।
 अथ चटुलकटाक्षबाणवर्षप्रगुणममुष्य पुरः पुरंश्चिचक्रम् ॥११॥
 अधरहसितकिंशुका शुकाय क्रमुकदलं वदनस्थमर्पयन्ती ।
 क्षितिपतितनयेत्र कापि नेत्रप्रणयिनि चुम्बनचातुरीमुवाच ॥१२॥
 गृहशिखरमगम्यमध्यरोहद् द्रुतमवधीरितपातभीतिरन्या ।
 मरणमपि तृणं समर्थयन्ते मनसिजपौरुषवासितास्तुरुण्यः ॥१३॥

कलकलमपरा मुधा विधाय क्षितितिलकानयनान्तमाससाद ।
 अवतरति मृगीदृशां तृतीयं मनसिजचक्षुरुपायदर्शनेषु ॥१४॥
 हृदि विहितपदेन शुद्धभासा कृतमधरं धरणीन्द्रसूनुनेव ।
 निपतितमवधीर्य हारमन्या हरिणविलोलविलोचना जगाम ॥१५॥
 उरसि मनसिजावतंसलीलासमुचितकोमलपल्लवानुकाराम् ।
 नखलिपिमपरा प्रकाशयन्ती सुरतविमर्दसहृत्वमाचक्षते ॥१६॥
 अभजत मणिकुण्डलं परस्याः अवणपरिच्युतमंसदेशमेत्य ।
 गलविगलितपुष्पबाणचक्रश्रियमसितोत्पलचारुलोचनायाः ॥१७॥
 परिकलितचुलुक्यराजपुत्रप्रथमविलोकनकौतुकत्वराराम् ।
 इति नगरकुरङ्गलोचनानामभवदनङ्गविलोभनो विलासः ॥१८॥
 नरपतितनयः कयापि कोपस्फुरितरदच्छदलेखयालुलोके ।
 प्रकटितपटुपञ्चबाणलीलाकलकिलकिञ्चितमीक्षणञ्चलेन ॥१९॥
 कनकसदनवेदिकान्तरालग्रथितपदः क्षितिपालनन्दनोसौ ।
 सुरशिखरितटीविटङ्गमध्यप्रणयिनमुष्णकरं निराचकार ॥ २० ॥
 कतिचिदपि दिनानि तत्र नीत्वा परिसरभूमिषुभूरिभिर्विलासैः ।
 चरणतलनिविष्टदुष्टवर्गः पुरमवलोकयतिस्म गाङ्गकुण्डम् ॥२१॥
 द्रविडनरपतिप्रतापभीत्या किमपि गते पयसां निधौ परस्तात् ।
 यदविहितविवाहमङ्गलाया बहिरिव निर्गतमादिधाम लक्ष्म्याः ॥२२॥
 गगनमुपगतेन शोभते यन्निरुपमकाञ्चनवप्रमण्डलेन ।
 सुरपुरमिव हेमशैलमध्ये विबुधविभूतिभरात्कृतप्रवेशम् ॥ २३ ॥
 विघटितपरिपन्थिसैन्यसार्थः पदमधिरोप्य स तत्र चोलसूनुम् ।
 नयनचुलुकलुरव्यमानकान्तिर्द्रविडवधूभिरुवास मासमात्रम् ॥२४॥
 विघटनमटवीधनुर्धराणां विषमपथेषु विधाय लीलयैव ।
 पुनरपि स जगाम तुङ्गभद्रां विरचितवन्दनमालिकां तरङ्गैः ॥२५॥
 अथ कतिषुचिदेव दैवयोमात्परिगलितेषु दिनेषु चोलसूनोः ।
 श्रियमहरत राजिगाभिधानः प्रकृतिविरोधहतस्य चेद्भिनाथः ॥२६॥

कुटिलमतिरसौ विशङ्कमानः पुनरमुमेव पराभवप्रगल्भम् ।
 प्रगुणमकृत पृष्ठकोपहेतोः प्रकृतिविरोधिनमस्य सोमदेवम् ॥२७॥
 सुभटशतनिशातखड्गधाराविहरणसत्रणपादपल्लवेव ।
 अपि नयनिपुणेषु नो भरेण क्षिपति पदं किमुत प्रमादिषु श्रीः ॥२८॥
 अवतरति मतिः कुपार्थिवानां सुकृतविपर्ययतः कुतोपि तादृक् ।
 ऋटिति विघटते यया नृपश्रीस्तटगिरिसंघटितेव नौः पयोधेः ॥२९॥
 व्रतमिदमिह शस्त्रदेवतानां दूढमधुनापि कलौ निरङ्कुशेपि ।
 अविनयपथवर्तिनं यदेताः प्रबलमपि प्रधनेषु वञ्चयन्ति ॥ ३० ॥
 इति मुषितधियः श्रिया प्रयान्त्या रभसवशादविचिन्त्य दग्धभूपाः ।
 बलभरबहुमानतः पतङ्गव्रतमुपयान्ति परप्रतापदीपे ॥३१॥
 सकलमपि विदन्ति हन्त शून्यं क्षितिपतयः प्रतिहारवारणाभिः ।
 क्षणमपि परलोकचिन्तनाय प्रकृतिजडा यदमी न संरभन्ते ॥३२॥

विदधति कुधियोत्र देवबुद्धिं

स्फटिकशिलाघटनासु वर्तुलासु ।

इति मनसि विधाय दग्धभूपास्त्रि-

नयनलिङ्गमपि स्पृशन्ति मिथ्या ॥ ३३ ॥

अविरततरुणीसहस्रमध्यस्थितिविगलत्पुरुषव्रता इवैते ।
 प्रतिपदमतिकातराः क्षितीशाः परिकलयन्ति भयं समन्ततोपि ॥३४॥
 अभिसरणपरा सदा वराकी समरमहाध्वसु रक्तपङ्क्तिषु ।
 हृदि धरणिभुजामियं नृपश्रीर्निहितपदैव कलङ्कमातनोति ॥३५॥
 गुणिनमगुणिनं वितर्कयन्ती स्वजनमभिन्नमनाप्तमाप्तवर्गम् ।
 वितरति मतिविप्लवं नृपाणामियमुपसर्पणमात्रकेण लक्ष्मीः ॥३६॥

विधिलिखितमिदं कुटुम्बमध्ये

नृपक्षिपदं समुपैति कश्चिदेव ।

इति हृदि न विचारयन्ति भूपाः

कुलमपि निर्दलमिति राजकुलध्याः ॥३७॥

अनुचितममुना किमग्रजस्य व्यवसितमुन्नतचेतसा यदस्मिन् ।
 अपकरणधिया चकार संधि कुलरिपुणा सह चोलराजिगेन ॥३८॥
 अथ नृपतनये कृतप्रयाणे गलितनयस्य वधाय राजिगस्य ।
 त्वरिततरमुपागतोस्य पृष्ठे सह सकलेन बलेन सोमदेवः ॥३९॥
 अनुसरदसितातपत्रमैत्रीं मधुकरमण्डलमाससाद येषाम् ।
 अतिविपुलकपोलदानपङ्कप्रभवसरोरुहिणीदलानुकारम् ॥४०॥
 अगणितसृणिभिः प्रधावितैर्यैः कुलगिरयः परिघटितास्तटेषु ।
 मुमुचुरिव मुखैरजस्रमस्रं विगलितधातुतरङ्गिणीमिषेण ॥४१॥
 निजदशनयुगैकबद्धवासां श्रियमिव कर्तुमुपोढकौतुका ये ।
 स्मरणशरणपङ्कजानि चक्रुः सततममर्षपुरःसराः सरांसि ॥४२॥
 श्रवणमधुरविस्फुरद्ध्वनीनां व्यधुरूपकारधियेव षट्पदानाम् ।
 मदसलिलमुदारसौरभं ये विटपिविधूननपातिभिः प्रसूनैः ॥४३॥
 निजतनुभरगौरवाद्गलन्तीं क्षितिमिव ये दधतिस्म शैलतुङ्गाः ।
 मदमुकुलितलोचनाश्चलन्तः किमपि करैः सविलासमुन्नमद्भिः ॥४४॥
 रणजलधिविलोडनप्रचण्डा गिरय इव द्विरदेश्वरास्तदीयाः ।
 दधुरतिमहतीमतीतसंख्याः श्रियमधिरोहितयोधमण्डलास्ते ॥४५॥
 कुलिशकठिनलोहबन्धयोगा निजगृहकुट्टिमवद्विलङ्घयतेस्म ।
 विशिखशकलकण्टकावकीर्णा रणखुरली रथमण्डलैर्यदीयैः ॥४६॥
 व्यजनचटुलवालधिप्रपञ्चप्रचुरसमीरणपुञ्जमध्यवर्ती ।
 त्वरितगमनलङ्घितोपि येषां मरुदविभाव्यतया न लज्जतेस्म ॥४७॥
 प्रतिफलननिभाः सहस्रभासा मणिमयपल्ययनप्रतिष्ठितेन ।
 निजरथवह्नार्थमाश्रिता ये स्वयमधिरुह्य परीक्षिता इवासन् ॥४८॥
 रवमनुमितधावनानुरूपं किमिति कृता पृथुला त्वया न पृथ्वी ।
 नभसि खुरपुटैरिति स्फुरद्भिर्विधिमिव ये स्म मुहुः प्रतिक्षिपन्ति ४९
 प्रतिदिशमधिरोहिताश्ववाराः परिचितकाञ्चनचित्रवर्मबन्धाः ।
 अगणितकृतपङ्कजयो हयास्ते कश्चि न चक्ररूपकं तदीयाः ॥५०॥

असितविलसितेन तद्गलानामसिलतिकानिवहेन निर्मलेन ।
 गगनगिरितटी नवेन्द्रनीलद्रुतिशतनिर्झरधारिणीव रेजे ॥५१॥
 क नु न विलसतिस्म कुन्तमाला कलितशिखरिण्डशिखरिण्डमण्डनश्रीः
 क्षणमविरहिता विपक्षसेनाभटशिरसामिव मण्डलैस्तदीया ॥५२॥
 बहुभिरभिहितैः किमद्भुतैर्वा भयजननं भुवनैकमल्लसैन्यम् ।
 रणरसचलितं विलोक्य केषामलभत चेतसि नान्तरं विकल्पः ॥५३॥
 द्रविडबलभरे क्रमादवाप्ते निकटमुदारभुजस्य राजसूनोः ।
 अपि नृपतिरसौ समीपमागादपकरणावसरं चिरादवाप्य ॥५४॥
 ग्रहकलितमिवाग्रजं विलोक्य प्रहरणसंमुखमश्रुपूर्णनेत्रः ।
 किमपि किमपि विक्रमाङ्कदेवश्चिरमनुचिन्त्य निवेदयाञ्चकार ॥५५॥
 अहह महदनर्थबीजमेतद्विधिहतकेन विरोधसारिणीभिः ।
 अविनयरसपूरपूरिताभिर्विहितमकीर्तिफलप्रदानसज्जम् ॥५६॥
 इह निहतनयः समागतो यत्समममुना परिपन्थिनाग्रजो मे ।
 समरशिरसि संचरन्पृष्ठकैः कथमपरासृशता मया निवार्यः ॥५७॥
 पितुरपि परिपन्थिनीं विधाय श्रियमहमत्र निवेश्यांबभूव ।
 सपदि कथमिमं कदर्थयामि व्यथयति मामहहा महाननर्थः ॥५८॥
 अपसरणमितः करोमि किञ्चित्प्रसरति गोत्रवधाय नैष बाहुः ।
 परमयमयशांस्त्रि दुष्टलोकः किमपि निपात्य मयि प्रमोदमेति ॥५९॥
 इति गिरमभिधाय निष्कलङ्कां विशदमनाः शनकैर्यशोधनोसौ ।
 अनुनयवचनानि तस्य पार्श्वे कति न विसर्जयतिस्म राजपुत्रः ॥६०॥
 स तु शपथशतैः प्रपद्य सर्वं वितथवचाः कुलपांसनत्वमाप्तः ।
 क्षणमनुगुणमैक्षत प्रहर्तुं मलिनधियां धिगनार्जवं चरित्रम् ॥६१॥
 किमिदमुपनतं यशोविरोधि त्रिदिवगतः किमु वक्ष्यते पिता मे ।
 इति मनसि निधाय जातनिद्रं नृपतनयं शशिमौलिरादिदेश ॥६२॥
 त्वमिह महति वत्स देवकार्ये ननु गुणवानवतारितो मयैव ।
 तरलयति मुखा विकल्पदोला किमिति मनस्तव शुद्धधैर्यान्मनः ॥६३॥

सपदि न शुभमस्ति मोहहेतोस्तिलपरिमाणमपि त्वदयजस्य ।
इहहि विहितभूरिदुष्कृतानां विगलतिपुण्यचयः पुरातनोपि॥६४॥

भव भुवनमहोत्सवे तदत्र

प्रगुणधनुः परिपन्थिनां प्रमाथे ।

स्मरसि न किमिति स्थितिस्तवैषा

ननुभुवि धर्मविरोधिनां वधाय ॥६५॥

गिरमिति स निशम्य विश्वमर्तुर्गिरितनयादयितस्य मुक्तनिद्रः ।

वचनमिदमलङ्घ्यमिन्दुमौलेरिति रणकर्मणि निश्चयं चकार ॥६६॥

प्रसरदुभयतः प्रहारसज्जं बलयुगलं तदवेब्य वीक्षतेस्म ।

समुचितसमरोपभोगलोभात्प्रतिकलमुत्पुलकं भुजद्वयं सः ॥६७॥

मदकरटिनमुत्कटप्रतापः प्रकटितवीरमृदङ्गधीरनादः ।

मथनगिरिमिवाधिरुह्य वेगात्प्रतिबलवारिधिलोडनं चकार ॥६८॥

अहमहमिकया प्रधाविताभ्यां मिलितममुष्य बलं तयोर्बलाभ्याम् ।

सलिलमभिमुखं सहाम्बुराशेस्तदनु महानदयोरिवोदकाभ्याम् ॥६९॥

मुखमसितपताकया पतन्त्या ध्वजगरुडः परिचुम्बितं दधानः ।

वदनपरिगृहीतपद्मस्य व्यतनुत सत्यगरुत्मतः प्रतिष्ठाम् ॥७०॥

प्रकटितपटुमौक्तिकावतंसद्विरदशिरः स्थलसंगतिं प्रपद्य ।

अलभत परमार्थसिंहलीलां करिवरकेतुपरिच्युतो भृगेन्द्रः ॥७१॥

कथमपि विनिपत्य संचरन्तः क्षतजतरंगवतीषु चिह्नमत्स्याः ।

सुरयुवतिविलोचनानि संख्ये विदधुरकृत्रिममत्स्यशङ्कितानि ॥७२॥

रुधिरपटलकर्दमेन दूरं रणभुवि दुर्गमतामुपागतायाम् ।

गमनमनिमिषप्रियाजनस्य प्रियमकरोदवलम्बनानपेक्षम् ॥७३॥

प्रहतिनिवहमूर्च्छितोधिरोहः स्वकरटिकर्णपुटानिलैः प्रबुध्य ।

अपरसुभटपातिते प्रहर्तयन्नुशयमापदलब्धवैरशुद्धिः ॥७४॥

नयनगतमरातिवीरचूडामणिदलनप्रभवं परागमेकः ।

करिदशनविदारितात्मवक्त्रः स्थलरुधिराञ्जलिभिर्निराचकार ॥७५॥

महति समरसंकटे भटोन्यः प्रतिभटनिर्दलनात्समाप्तशास्त्रः ।
 अगणितमरणः प्रविश्य वेगादरिकरतः करवालमाचकर्ष ॥९६॥
 असुभिरपि यियासुभिः प्रविश्य प्रतिभटमूर्धन कोपि दत्तपादः ।
 फलममनुत जन्मनोपि लब्धं यशसि रतिर्महतां न देहपिण्डे ॥९७॥
 विघटितकवचश्चचार कश्चित्प्रतिभटमुज्झितकङ्कटं विलोक्य ।
 विमलविजयलालसाः खलानामवसरमल्पमपि प्रतिक्षिपन्ति ॥९८॥
 रुधिरभृतकपालपंक्तिमध्ये मदकरटी विनिपत्य कर्णतालैः ।
 शिशिरमिव चकार पानपात्रप्रणयिनमासवमागतस्य सृत्योः ॥९९॥
 उपरि निपतितः कपालशुक्तः अवणपुटः करिणः कृपाणलूनः ।
 समरभुवि कृतान्तपानलीलाचषकपिधानविलासमाससाद ॥ १०० ॥
 अनियतविजयश्रियि प्रवृत्ते चिरमिति तत्र महाहवप्रबन्धे ।
 प्रतिभटकपालपाटनाय द्विरदमुदञ्चयतिस्म राजसूनुः ॥ १०१ ॥
 क्षणमुदचलदुच्चलत्पताके द्रविडबले क्षणमग्रजस्य सैन्ये ।
 रणभुवि स चचार यत्रतत्र न्यपिबदरातियशांसि तत्रतत्र ॥१०२॥
 पददलितबृहत्कपालजाले करटिनि तस्य दुरापभाजनानाम् ।
 सुभटरुधिरसीधुपानकेलिर्व्यघटत तत्र पिशाचसुन्दरीणाम् ॥१०३॥
 ध्रुवमरिषु पदं व्यधत्त लक्ष्मीः सुरभिकुशेशयकोशकेलिसक्ता ।
 नृपसुतकरवाललेखया यन्मधुकरमालिकयेव चुम्ब्यतेसम ॥ १०४ ॥
 अनुकृतसमवर्तिपानलीलाचषककरालकपालशुक्तिमध्ये ।
 करिदशनपरंपरा निपत्य श्रियमतनोदुपदंशमूलकानाम् ॥ १०५ ॥
 वशमवनिपतिद्वयं नयन्ती चटुलपृष्ठककटाक्षमालिकाभिः ।
 क्षितिपतितनयेन वीरलक्ष्मीः सुचिरमनर्त्यत संगराग्ररङ्गे ॥१०६॥
 कुलिशनिशितकङ्कपत्रभिन्नास्त्रिभुवनभीमभुजस्य राजसूनोः ।
 प्रतिभटकरटिस्थिताः प्रवीराः प्रणतिपरा इव संमुखा निपेतुः ॥१०७॥
 द्विरदपतिरमुष्य शत्रुसेनाभटमुखपद्मविमर्दकेलिकालः ।
 भटिति रणमरुचकार लक्ष्मीकाभूतविभ्रसुन्दरीककोशम् ॥१०८॥

धृतसुभटकरङ्कमङ्कवर्तिद्विरदघटाविकटास्थिचक्रवालम् ।
 रणमनशु कृतान्तभुक्तशेषप्रणयि बभूव शिवासहस्रयोग्यम् ॥ ८९ ॥
 किमपरमुपरि प्रतापभाजां विहितपदः स बभञ्ज राजयुग्मम् ।
 द्रविडपतिरगात्क्वचित्पलाय्य न्यविशत बन्धनधाम्नि सोमदेवः ॥ ९० ॥
 उभयनरपतिप्रतापलक्ष्म्यौ विलुलुठतुश्चरणद्वये तदीये ।
 त्रिभुवनमहनीयबाहुवोर्यद्रविणविभूतिमतां किमत्यसाध्यम् ॥ ९१ ॥
 विहितसमरदेवतासपर्यः परिकरितः क्षितिपालयुग्मलक्ष्म्या ।
 अथ शिथिलितकङ्कटस्तटान्तस्थितकटकां स जगाम तुङ्गभद्राम् ॥ ९२ ॥
 वितरितुमिदमग्रजस्य सर्वं पुनरुपजातमतिः स राजपुत्रः ।
 तुहिनकिरणखण्डमण्डनेन स्फुरदशरीरगिरा रुषा न्यषेधि ॥ ९३ ॥
 मुखपरिचितराजहंसभङ्गया सरसिरुहेष्विव पूरयत्सु शङ्खान् ।
 सरिति घटिकयेव शोधयन्त्यां प्रतिफलितार्कमिषेण लग्नवेलाम् ॥ ९४ ॥
 अतिशिशिरतया मरुत्सु सक्त्या कुलसरितामिव वारिधारयत्सु ।
 नभसि विकिरतीव गाङ्गमम्भः पवनसमाहृतशीकरच्छलेन ॥ ९५ ॥
 अतिविशदतया दिशां मुखेषु स्मितमिव केतकमित्रमुद्रहत्सु ।
 निखिलभुवनमानसेषु हर्षप्रसरवशेन नितान्तमुत्सुकेषु ॥ ९६ ॥
 वरकरिषु गभीरदुन्दुभीनां ध्वनिमिव संजयनत्सु गर्जितेन ।
 दिशिदिशि तुरगेषु सान्द्रशंखस्वनकमनीयसहर्षहेषितेषु ॥ ९७ ॥

अथ सुरपथवल्गद्विव्यभेरीनिनादं

प्रशमितपरितापं भर्तृलाभात्पृथिव्याः ।

अलभत चिरचिन्ताचान्तचालुक्यलक्ष्मी-

कलममुषमभिषेकं विक्रमादित्यदेवः ॥ ९८ ॥

श्रीचालुक्यनरेन्द्रसूनुरनुजं तत्रैव पुण्ये दिने

कारुण्यातिशयादसूत्रयदसौ पात्रं महत्याः श्रियः ॥

दासी यद्भवनेषु विक्रमधनक्रीता ननु श्रीरियं

तेषामाश्रितपोषणाय गहनं किं नाम पृथ्वीभुजाम् ॥ ९९ ॥

इति श्रीविक्रमांकदेवचरिते महाकाव्ये त्रिभुवनमल्लदेवविद्यापति-

काश्मीरकमट्टबिल्हणविरचिते षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

स सर्वमावज्य रिपुप्रमाथी मनोरथानामथ पूरणेन ।
 परिभ्रमन्शुद्धकुतूहलेन दिग्दन्तिशेषाः ककुभश्चकार ॥ १ ॥
 गते समाप्तिं नरनाथचक्रे निचोलकारासितचापदण्डः ।
 निर्वाप्य चोलस्य पुनः प्रतापं क्रमेण कल्याणमसौ विवेश ॥ २ ॥
 अत्रान्तरे मन्मथबाणमित्रं लतावधूविभ्रमसूत्रधारः ।
 स्थानोपदेशी पिकपञ्चमस्य शृङ्गारबन्धुर्मधुराविरासीत् ॥ ३ ॥
 शीतर्तुभीत्या विविशुः समस्ताः किं कन्दरासीमनि चन्दनाद्रेः ।
 यन्निःसरन्तिस्म हिमव्यपाये दिवा च रात्रौ च ततः समीराः ॥ ४ ॥
 कृतप्रकोपाः पवनाशनानां निवासदानादिव पन्नगानाम् ।
 विनिर्ययुश्चन्दनशैलकुञ्जादाशामुदीचीं प्रति गन्धवाहाः ॥ ५ ॥
 रथस्थितानां परिवर्तनाय पुरातनानामिव वाहनानाम् ।
 उत्पत्तिभूमौ तुरगोत्तमानां दिशि प्रतस्थे रविरुत्तरस्याम् ॥ ६ ॥
 अहो नु चैत्रं प्रति कापि भक्तिरकृत्रिमा केरलमारुतस्य ।
 द्राघिष्ठमध्वानमसौ विलङ्घ्य सर्वत्र तस्यानुचरो यदासीत् ॥ ७ ॥
 देया शिलापट्टकपाटसुद्रा श्रीखण्डशैलस्य दरीगृहेषु ।
 वियोगिनीकण्टक एष वायुः कारागृहस्यास्तु चिरादभिज्ञः ॥ ८ ॥
 विरूक्षणीयः सखि दक्षिणात्यस्त्वया न वायुः परुषैर्वचोभिः ।
 यत्कोपनिःश्वासपरंपराभिः पीनत्वमायात्ययमुष्णतां च ॥ ९ ॥
 बाणेन हत्वा मृगमस्य यात्रा निवार्यतां दक्षिणमारुतस्य ।
 इत्यर्थनीयः शबराधिराजः श्रीखण्डपृथ्वीधरकन्दरस्थः ॥ १० ॥
 यद्वा मृषा तिष्ठतु दैन्यमेतन्नेच्छन्ति वैरं मरुता किराताः ।
 केलिप्रसङ्गे शबराङ्गनानां स हि स्मरग्लानिमपाकरोति ॥ ११ ॥
 दुराग्रहश्चन्दनमारुतस्य सदा यदन्यर्तुपराङ्मुखोयम् ।
 अनेन चैत्रः सुतरामसह्यश्चन्द्रोदयेनेव शरत्प्रदोषः ॥ १२ ॥
 वियोगिनीनां किमु पापमेतन्मेधाथवा दक्षिणमारुतस्य ।
 कदापि दिग्मोहवशादादेव न चन्दनाद्रेः परतः प्रयासि ॥ १३ ॥

इति भ्रमत्सौरभमांसलेन निमीलितानां मलयानिलेन ।
 अभूच्चिरं भूमिगृहस्थिनां प्रलापमालाः प्रियकाङ्क्षिणीनाम् ॥१४॥
 कन्दर्पदेवस्य विमानसृष्टिः प्रसादमाला रसपार्थिवस्य ।
 चैत्रस्य सर्वर्तुविशेषचिह्नं दोलाविलासः सुदृशां रराज ॥१५॥
 दोलाधिरूढस्य वधूजनस्य नितम्बभारेण गतागतेषु ।
 त्रुटिर्यदालम्बगुणेषु नाभूत्सा भाग्यशक्तिः कुसुमायुधस्य ॥ १६ ॥
 जनेषु दोलातरलाः पुरंध्रीः संभूय भूयःसु विलोकयत्सु ।
 लक्ष्यस्य विस्तीर्णतया मनोभूरवन्ध्यपातैरिषुभिर्ववर्ष ॥ १७ ॥
 दोलाविनोदेन विलासवत्यः सुदूरमारुह्य निवर्तमानाः ।
 अर्धं नभः प्राङ्गणसङ्गिनीनां विलासमापुच्छिदशाङ्गनानाम् ॥१८॥
 विलासदोलाफलके नितम्बविस्ताररुद्धे परितस्तरुण्याः ।
 लब्धः परं कुञ्चितकार्मुकेण तत्रावकाशः कुसुमायुधेन ॥ १९ ॥
 सौन्दर्यमिन्दीवरलोचनानां दोलासु लोलासु यदुल्लास ।
 यदि प्रसादाल्लभते कवित्वं जानाति तद्वर्णयितुं मनोभूः ॥ २० ॥
 दोलासु यदोलनमङ्गनानां यन्मल्लिका यच्च लवङ्गवायुः ।
 सा विश्वसंमोहनदीक्षितस्य मुख्याङ्गसंपत्कुसुमायुधस्य ॥ २१ ॥
 प्रसार्य पादौ विहितस्थितीनां दोलासु लोलांशुकपल्लवानाम् ।
 मनोरथानामपि यन्नगम्यं तद्द्रष्टुमापुः सुदृशां युवानः ॥ २२ ॥
 उन्नम्य दूरं मुहुरानमन्त्यः कान्ताः श्लथीभूतनितम्बजाड्याः ।
 दोलाविलासेन जितभ्रमत्वात्प्रकर्षमापुः पुरुषायितेषु ॥ २३ ॥
 कुचस्थलैर्निर्दलितो वधूनां संजीवितः श्वाससमीरणेन ।
 क्लेशातिरेकान्मलयानिलोभूदभृत्येषु मान्यः कुसुमायुधस्य ॥२४॥
 यत्पूरयामास विलासदोलाः पुरंध्रिभिः सिञ्जितनूपुराभिः ।
 तेनोद्वासं मन्मथराजधानीं मन्ये वसन्तीमकरोद्वासन्तः ॥ २५ ॥
 चुचुम्ब वत्क्राणि चकर्ष वस्त्रं चिरं विशश्राम नितम्बबिम्बे ।
 दोलाविलासे गुरुरङ्गनानामनङ्गुशः केरलमारुतोभूत् ॥ २६ ॥

गीतेषु याताः किमु शिष्यभावं वामभ्रुवां विश्रमदोलिनीनाम् ।
 पुंस्कोकिलाः काननचारिणी यच्चातुर्यमापुः कलपञ्चमस्य ॥२९॥
 सङ्गादजस्रं वनदेवतानां लीलावनान्तस्थितयः शकुन्ताः ।
 आरुह्य दोलासु विलासिनीनां ताभिः सह श्रेमुरसंभ्रमेण ॥२८॥
 हस्तद्वयीगाढगृहीतलोलदोलागुणानां जघने वधूनाम् ।
 असंवृतसूस्तदुकूलबन्धे किमप्यभूदुच्छ्वसितो मनोभूः ॥ २९ ॥
 त्वरोपयातप्रियबाहुपाशरुद्धेषु कण्ठेषु वियोगिनीनाम् ।
 वृथा समाहूतकृतान्तपाशः स्मितं लतानां मधुराततान ॥ ३० ॥
 निवारणं पल्लववीजनानां स्थितिर्निवातेषु गृहोदरेषु ।
 मूर्च्छाप्रबन्धेषु वियोगिनीनामासीदपूर्वः परिहारमार्गः ॥ ३१ ॥
 लीलाशुकाः कोकिलकूजितानामतिप्रहर्षाद्विहितानुकाराः ।
 गृहादवाह्यन्त वियोगिनीभिर्गुणो हि काले गुणिनां गुणाय ॥३२॥
 श्रुत्वेव वृत्तावसरं तुषारं बहिः स्थितानामलिनां निनादैः ।
 द्विवर्षकन्यामुखकोमलाभं पङ्कोदरात्पङ्कजमाविरासीत् ॥ ३३ ॥
 नवीनदन्तोद्गमसुन्दरेण वासन्तिकाकुड्मलनिर्गमेन ।
 उत्संगसङ्गी विपिनस्थलीनां बालो वसन्तः किमपि व्यराजत् ॥३४॥
 सुगन्धिनिःश्वासमिवानुवेलमुद्वेल्लता दक्षिणमारुतेन ।
 मुखं प्रसूनस्मितदन्तुरं तच्चुचुस्व मुग्धस्य मधोर्वनश्रीः ॥ ३५ ॥
 संक्रान्तभृङ्गीपदपङ्क्तिमुद्रं पौष्पं रजः क्षमाफलके रराज ।
 क्रमाल्लिपिज्ञानकृतक्षणस्य क्षणं मधोरक्षरमालयेव ॥ ३६ ॥
 समारुरोहोपरि पादपानां लुलोठ पुष्पोत्कररेणुपुञ्जो ।
 लताप्रसूनांशुकमाचकर्ष क्रीडन्वनैः किं न चकार चैत्रः ॥ ३७ ॥
 दक्षप्रवालौष्ठसमर्पणाय लतावधूनां मुकुलस्तनीनां ।
 मत्तालिवैतालिकगीतकीर्तिभ्रमन्मधुर्यौवनमारुरोह ॥ ३८ ॥
 सलीलमङ्गीकृतपञ्चबाणसाम्राज्यभारस्य मधोरभङ्गः ।
 एको भुजस्तस्य लवङ्गवायुरन्यः पिकलीकलपञ्चमामूत ॥ ३९ ॥

राशीकृताः पुष्पपरागपुञ्जाः पदेपदे दक्षिणमास्तनेन ।
 मत्तस्य चैत्रद्विरेदस्य कर्तुमन्नूणहेतोरिव प्रांसुतल्पान् ॥ ४० ॥
 लग्नद्विरेफध्वनिपूर्यमाणं वासन्तिकायाः कुसुमं नवीनम् ।
 आसादयामास वसन्तमासजन्मेत्सवे मङ्गलशङ्खलीलाम् ॥ ४१ ॥
 गते हिमताँ ध्रुवमुष्णखिन्नः शीतोपचारं मलयः सिधेवे ।
 यदाजगाम व्यजनोपमानां समीरणञ्चन्दनपल्लवानाम् ॥ ४२ ॥
 मनस्विनीनां मनसेवतीर्य मासस्य वेगेन पलायितस्य ।
 जीवग्रहायेव वसन्तमित्रं बभ्राम वायुः ककुभां मुखानि ॥ ४३ ॥
 वियोगिनीनामवशाल्लुलोठ कण्ठेषु लीलाकलपञ्चमो यः ।
 तेनैव चक्रे मदनस्य कार्यं पुण्यैर्यशोभूत्पिकपञ्चमस्य ॥ ४४ ॥
 पदातिसंवर्गणकारणेन पदेपदे चम्पकराशिभङ्गया ।
 वसन्तसामन्तविकीर्यमाणं हेमेव रेजे स्मरपार्थिवस्य ॥ ४५ ॥
 चचार चूतद्रुममञ्जरीषु चुचुम्ब नानाकलिकामुखानि ।
 स्त्रीराज्यमध्यस्थ इव द्विरेफः स्थातुं न लेभे क्षणमेवमेव ॥ ४६ ॥
 विलासिनामादिगुह्यलोक्यामन्योन्यलीलाभुजबन्धनेषु ।
 उत्तम्भिताशोकपलाशपाणिर्न चैत्रमल्लः प्रतिमल्लमाप ॥ ४७ ॥
 पुरंग्रिगंडूषसुराभिलाषं पश्यन्नशोको बकुलद्रुमस्य ।
 प्रियप्रियापादतलप्रहारमात्मानमल्पव्यसनं विवेद ॥ ४८ ॥
 चूतद्रुमालीभुजपञ्जरेण रणद्विरेफावलिकङ्कणेन ।
 मित्रं मधुः कोकिलमञ्जुनादपूर्वाभिभाषी स्मरमालिलिङ्ग ॥ ४९ ॥
 उन्निद्रपङ्क्तिस्थितचम्पकानि चकाशिरे केलिवनान्तराणि ।
 वियोगिनीनां कवलीकृतानां सुवर्णकाञ्चीभिरिवाञ्जितानि ॥ ५० ॥
 मर्मव्यथाविस्मयघूर्णमाना मूर्धोच्छलत्कुण्डलविभ्रमेण ।
 शब्दानुसारेण वियोगिनीभिः क्षिप्ताः पिकानामिव कण्ठपाशाः ॥ ५१ ॥
 उदञ्चयन्किंशुकपुष्पसूचीः सलीलमाधूतलताकशायः ।
 वियोगिनां निग्रहणाय सज्जः कामाञ्जया दक्षिणमास्तोभूत् ॥ ५२ ॥

प्रसूननाराचपरंपराभिर्वर्षत्सु योधेष्विष पादपेषु ।
 वसन्तमत्तद्विरदाधिरूढः प्रौढत्वमाप स्मरभूमिपालः ॥ ५३ ॥
 समर्प्यमाणाद्भुतकौसुमाख्यैश्चैत्रेण चित्रीकृतकाननेन ।
 अधिज्यधन्वापि पराङ्मुखोभून्निषङ्गभारे भगवाननङ्गः ॥ ५४ ॥
 शृङ्गारिणीमार्जितदन्तपङ्क्तिकान्त्येव निर्यन्त्रणमुच्छलन्त्या ।
 प्रक्षाल्यमानस्य शनैरवापुरनिन्द्यमिन्दोः किरणाः प्रसादम् ॥ ५५ ॥
 त्वं चैत्र मित्रं यदि मन्मथस्य तस्मिन्ननङ्गे कथमक्षताङ्गः ।
 ज्ञातं तवान्तर्गतमागतोसि मिषेण नाशाय वियोगिनीनाम् ॥ ५६ ॥
 नूनं महापातकिनं वितर्क्य वियोगिवर्गक्षयदीक्षितं त्वाम् ।
 पस्पर्श न त्र्यम्बकनेत्रवह्निः पापैरखण्डैः प्रियखण्डितानाम् ॥ ५७ ॥
 हराहवे पञ्चशरं विमुच्य पलायितः क्षत्रपराङ्मुखस्त्वम् ।
 अस्य क्षताङ्गस्य पुरोधुनात्र हा चैत्रचण्डाल कथं स्थितोसि ॥ ५८ ॥
 इहैव सङ्गः फलवान्बभूव त्वया महापातकिनां पिकानाम् ।
 यदर्धदग्धोल्मुककश्मलेन देहेन लोकस्य बहिश्चरन्ति ॥ ५९ ॥
 त्वं द्रष्टृदोषोपि पुनः स्मरेण यत्संगृहीतः शृणु तत्र हेतुम् ।
 अङ्गीकृतस्त्रीवधपातकेन केनापि न स्वीकृत एष भारः ॥ ६० ॥
 इत्थं वियोगज्वरजर्जराणामुद्देजितानां मधुमासलक्ष्म्या ।
 आसन्मुहुः पद्ममललोचनानां चैत्रे विचित्रोक्तविचेष्टितानि ॥ ६१ ॥
 गम्भीरता चाटुपराङ्मुखत्वं सौभाग्यमन्यप्रमदारदाङ्कः ।
 दोषोपि यूनां गुण एव मेने पुरन्धिभिर्मानपराङ्मुखीभिः ॥ ६२ ॥
 मानग्रन्थिकदर्थनाय कथिताः सर्वत्र पुंस्कोकिलाः
 केलीकर्मणि दाक्षिणात्यमरुतामध्यक्षभावोर्पितः ।
 पुष्पास्त्रस्य जगत्त्रयेऽपि विरहप्रत्यूहहेवाकिनः
 सन्नद्धोयमसाध्यसाधनविधौ साम्राज्यसैत्री मधुः ॥ ६३ ॥
 लीलासगानविधिक्षमं मधुलिहां पुष्पेषु जातं मधु
 स्थायित्वं कलकण्ठकण्ठकुहरेष्वासेवते पञ्चमः ।
 एकच्छत्रजगज्जयार्जनरुचेर्देवस्यशृङ्गारिण—
 अचैत्रविग्रमकाण्डे एव समभूस्त्रैलोक्यजैत्रो मरुः ॥ ६४ ॥

भृङ्गै विश्ववियोगिवर्गदलनोत्तालस्य वैतालिकैः
 प्रारब्धा बिहदावलीव पठितं शृङ्गारबन्धोर्मधोः ।
 नादः कोकिलयोषितां प्रमुषितत्रैलोक्यमानग्रहः
 कामः संप्रति कौतुकाद्यदि परं पौष्पं धुनीते धनुः ॥ ६५ ॥
 कूजत्कोकिलकोपिता गुरुधनुः शिखां समासेवते
 खिन्ना चन्दनमाहतेन मलये दावाग्निमाकांक्षति ।
 किंचान्विष्यति दुर्मना दलयितुं कामेन मैत्रीं मधोः
 कर्तुं धावति दुर्लभे त्वयि सखी कां कां न वा लूतासु ॥ ६६ ॥
 संनद्धं माधवीनां मधु मधुपवधूकेलिगण्डूषयोग्यं
 विश्राम्यन्ति श्रमेण क्वचिदपि महतो न क्षणं दाक्षिणात्याः ।
 क्रीडाशैलीभवन्ति प्रतिकलमलिनां कौसुमाः पांसुकूटा-
 श्चैत्रे पुष्पास्त्रमित्रे तदिह विरहिणां कीदृशी जीविताशा ॥ ६७ ॥
 पुष्पैर्भ्राजिष्णुभस्त्राकरणिमगणितैः शाखिनः के न याता-
 श्चञ्चन्निस्त्रिशलेखामयमिव भुवन भृङ्गमालाभिरास्ते ।
 त्रैलोक्याकारण्डचण्डप्रहरणनिबिडोत्साहकण्डूलदोष्णः
 पुष्पेषोजैत्रशस्त्रव्यतिकरविधये साधु सज्जो वसन्तः ॥ ६८ ॥
 शून्याः श्रीखण्डवातैरभिलषति भुवश्चन्दनाद्रेः परस्ता-
 लीलोद्याने सखीनां सृजति कलकलं कोकिलोत्सारणाय ।
 स्तौति क्रीडावनालीनिखिलपरिमलाचान्तये चञ्चुरीकां-
 श्चासुभ्रूस्त्वद्वियोगे कमिव न भजते जीवरत्नाभ्युपायम् ॥ ६९ ॥
 मलयगिरिसमीराः सिंहलद्वीपकान्ता-
 मुखपरिचयलब्धस्फारकपूर्वासाः ।
 द्रविडयुवतिदोलाकेलिलोलनितम्ब-
 स्थलशिथिलितवेगाः सेव्यतामाप्नुवन्ति ॥ ७० ॥
 पानीयं नालिकेरीफलकुहरकुहूत्कारि कल्लोलयन्तः
 कावेरीतीरतालदुमभरितसुरभाण्डभांकारचण्डाः ।

उन्मीलनीलमोचापरिचयशिशिरा वान्त्यमी द्राविडीनां
कर्पूरापाण्डुगण्डस्थललुठितरया वायवो दाक्षिणात्याः ॥ ७१ ॥

भृङ्गालीभिरधिज्यमन्मथधनुर्लीलां लभन्ते लताः
किं पुष्पं न बिभर्ति पुष्पधनुषस्त्रैलोक्यजैत्रास्त्रताम् ।

दोलान्दोलनकेलिलोलवनितासंचारितास्त्रोधुना
पञ्चेषुश्चललक्षभेदविधिना गर्वं समारोहति ॥ ७२ ॥

उन्माद्यन्मधुपेन पुष्पमधुनः केलीभुवः पङ्किलाः
सर्वे भङ्गभयं दिशन्ति कुसुमप्राग्भारतः पादपाः ।

चैत्रैणास्त्रपरंपराव्ययविधौ दैन्यं परित्याजितः
कामः संप्रति बाणमोक्षरसिको लक्ष्येष्वलक्ष्येषु च ॥ ७३ ॥

नीता नूतनयौवनप्रणयिना चैत्रेण चित्रां लिपिं
हर्षाद्वर्षति का न काननमही पुष्पैः कटाक्षैरिव ।

दोलारूढपुरंध्रिपीनजघनप्राग्भारमाधुन्वतः
किं मानद्रुमभञ्जनाय गहनं लङ्कानिलस्याधुना ॥ ७४ ॥

पौलस्त्योद्यानलीलाविटपितलमिलन्मैथिलीपादमुद्राः
कर्पूरद्वीपवेलाचलविपिनतटीपांसुकेलीरसज्ञाः ।

क्रीडाताम्बूलचूर्णग्लपितमुखहृतक्लान्तयः केरलीना-
मामोदन्ते समीराः स्मरसुभटजयाकांक्षिणो दाक्षिणात्याः ॥ ७५ ॥

यश्चूताङ्कुरकन्दलीकवलनात्कर्णामृतग्रामणी-
श्रद्धायामात्रपरिग्रहोपि जगृहे पञ्चेषुजैत्रेषुताम् ।

ताम्यत्तालुविटङ्कसङ्कटतटीसंचारतः पञ्चमः
सोयं कोकिलकामिनीगलत्रिलादामूलमुन्मूलति ॥ ७६ ॥

विरहविधुरकामिनीसहस्रप्रहितमनोभवलेखसूक्तिमिश्रैः ।
सुरभिसमयवर्णनैरकुर्वन्निति नृपतेरथ वन्दिनः प्रसादम् ॥ ७७ ॥

इति श्रीविक्रमांकदेवचरिते महाकाव्ये त्रिभुवनमल्लदेवविद्यापति-

समये तत्र पुष्पास्त्रभिन्ने विक्रमभूपतेः ।
 उद्भूतनूतनाश्चर्या श्रोत्रसैत्रीमगात्कथा ॥ १ ॥
 यथास्ति विजयस्तम्भप्रशस्तिरिव मान्मथी ।
 करहाटपतेः पुत्री त्रिजगन्नेत्रकार्मणम् ॥ २ ॥
 विद्याधरकुमारी सा गौरीदयितशासनात् ।
 कृते कस्यापि कुरुते स्वयंवरमहोत्सवम् ॥ ३ ॥
 चन्द्रलेखेति नामास्याश्चन्द्रलेखासमत्विषः ।
 मृत्युञ्जयमहामन्त्रसैत्रीमेति मनोभुवः ॥ ४ ॥
 अन्तरङ्गमनङ्गस्य शृङ्गारकुलदैवतम् ।
 अङ्गीकरोति तन्वङ्गी सा विलासमयं वयः ॥ ५ ॥
 तस्याः पादनखश्रेणिः शोभते लटभभ्रुवः ।
 रत्नावलीव लावण्यरत्नाकरसमुद्भता ॥ ६ ॥
 स्तनभारोत्र वक्त्रेन्दुचन्द्रिकावरणं मम ।
 इति तत्पादयोर्लङ्गा वेद्धि प्राङ्गणपद्मिनी ॥ ७ ॥
 अमूल्यस्य मम स्वर्णतुलाकोटिद्वयं कियत् ।
 इति कोपादिवाताम् पादयुग्मं मृगीदृशः ॥ ८ ॥
 तत्पादनखरत्नानां यदलक्तकमार्जनम् ।
 इदं श्रीखण्डलेपेन पाण्डुरीकरणं विधोः ॥ ९ ॥
 जाग्रतः कमलालङ्घनीं यज्जग्राह तदद्भुतम् ।
 पादद्वन्द्वस्य मत्तेभगतिस्तेये तु का स्तुतिः ॥ १० ॥
 अत्यपूर्वस्य रागस्य पूर्वपक्षाय पल्लवाः ।
 पद्मानि पादयुग्मस्य प्रत्युदाहरणानि च ॥ ११ ॥
 दृश्यन्ते मानसोत्तंसाः राजहंसा कचिद्यदि ।
 गतौ चरणयोस्तस्याः प्रक्ष्यते यावदन्तरम् ॥ १२ ॥
 नितम्बपीड्यमानेन पादयुग्मेन सुभ्रुवः ।
 कृता भकुटिभङ्गीव नीलनूपुरमालया ॥ १३ ॥

हेममञ्जीरमालाभ्यां भाति जङ्घालताद्वयम् ।
 कृतालवालं लम्बाभ्यां कुङ्कुमेनेव सुभ्रुवः ॥ १४ ॥
 लम्बिताः कदलीस्तम्भास्तदूरुभ्यां पराभवम् ।
 अत्यन्तमृदुभिर्लब्धो जडैः क्व जयडिण्डिमः ॥ १५ ॥
 मन्ये तदूरु संम्भाव्य हस्तसर्वस्वहारिणौ ।
 वहन्त्यस्पृश्यताहेतोर्मातङ्गत्वं मतङ्गजाः ॥ १६ ॥
 नितम्बबिम्बं बिम्बोष्ठी चन्द्रकान्तशिलाघनम् ।
 धत्ते कन्दर्पदोःस्तम्भप्रशस्तिफलकोपमम् ॥ १७ ॥
 विस्तारिणा मुहुस्तस्याः ओणीबिम्बेन पीडिता ।
 त्रुटिता त्रुटितास्मीति पूत्करोतीति मेखला ॥ १८ ॥
 अपर्याप्तभुजायामः सखेदोस्याः सखीजनः ।
 ओण्यां कथंचित्कुरुते रशनादामबन्धनम् ॥ १९ ॥
 अनङ्गरङ्गपीठोस्याः शृङ्गारस्वर्णविष्टरः ।
 लावण्यसारसंघातः सा घना जघनस्थली ॥ २० ॥
 तन्नितम्बस्य निन्दन्ति वृद्धिं परिजनाङ्गनाः ।
 काञ्चीनवनवग्रन्थिग्रथनेन कदर्थिताः ॥ २१ ॥
 नितम्बगौरवेणासौ गौराङ्गी खिद्यते दृढम् ।
 हारयत्यपरिस्पन्दा कन्दुकं क्रीडितेषु यत् ॥ २२ ॥
 तदीयजघनाभोगगरिमा विस्मयास्पदम् ।
 दूरपाती पृष्ठकोभूद्येनानङ्गस्य साङ्गना ॥ २३ ॥
 नाभिरन्ध्रं प्रविष्टास्याः श्यामला रोमवत्लरी ।
 त्रस्ता तिमिरलेखेव मेखलामणिकान्तितः ॥ २४ ॥
 भाति रोमावली तस्याः पयोधरभरोन्नतौ ।
 जाता रत्नशलाकेव ओणिवैदूर्यभूमितः ॥ २५ ॥
 नाभिसङ्गेन गौराङ्ग्याः शोभते रोममञ्जरी ।
 कन्दर्पहेमकटकाललाक्षाधारेव निगता ॥ २६ ॥

नाभीवलयसंबद्धा रोमाली भाति सुभ्रुवः ।
 सहिता निगडेनेव शृङ्खला स्मरदन्तिनः ॥ २७ ॥
 रोमावली विलासिन्याः प्रविष्टा नाभिमण्डलम् ।
 कियद्गाम्भीर्यमत्रेति तात्पर्यमिव बिभ्रती ॥ २८ ॥
 स्तनौ तुङ्गौ समारूढे चापन्यस्तभरे स्मरे ।
 कोदण्डाटनिमुद्रेव जाता नाभी नतभ्रुवः ॥ २९ ॥
 मन्ये समाप्तलावण्यसारे सर्गे सृगीदृशः ।
 अपूरयित्वेव गतो नाभिरन्धं प्रजापतिः ॥ ३० ॥
 लिखन्त्याः कामसाम्राज्यशासनं यौवनश्रियः ।
 गलितेव मषीधारा रोमाली नाभिगोलकात् ॥ ३१ ॥
 जाने रात्रिषु तन्मध्ये ददाति शनकैः पदम् ।
 गम्भीरनाभिकुहरप्रवेशशङ्कया स्मरः ॥ ३२ ॥
 हारः कुरङ्गशावाद्या राजति स्थूलमौक्तिकः ।
 नाभिलावण्यपानीयघटीयन्त्रगुणोपमः ॥ ३३ ॥
 स्तनभाराय मध्येन त्रिवलिव्याजतः कृता ।
 तस्याः शङ्कितभङ्गेन भ्रूभङ्गानामिवावलिः ॥ ३४ ॥
 तदीयत्रिवलीमार्गसोपानारोहणश्रमः ।
 अनङ्गत्वादनङ्गस्य जातो रत्येकगोचरः ॥ ३५ ॥
 परिहृत्य दुरारोहं तस्याः स्तनतटं कृता ।
 कन्दर्परथसंचारमार्गालीव वलित्रयी ॥ ३६ ॥
 दरिद्रमुदरं दृष्ट्वा चक्रे लावण्यपूर्णयोः ।
 पन्थानं स्तनयोस्तस्यास्त्रिवलीविषमं विधिः ॥ ३७ ॥
 राजति त्रिवली तस्याः स्तनभारोन्नतिक्रमात् ।
 उपर्युपरि जातेव हारमुद्रापरंपरा ॥ ३८ ॥
 युक्तं मध्ये कृशा तन्वी कार्मुकीकरणाय यत् ।
 अत्रैव कुसुमास्त्रेण पीड्यते पितृभुविना ॥ ३९ ॥

स्तनौ भारार्पणव्यग्रौ काञ्ची कलकलोन्मुखी ।
 कस्यां दिशि न मध्यस्य तस्याः काश्यं सहेतुकम् ॥ ४० ॥
 भाति निर्विवरे तस्याश्चित्रं कुचयुगान्तरे ।
 क्रीडाकुरङ्गलितोच्चण्डकोदण्डः कुसुमायुधः ॥ ४१ ॥
 कुचद्वये चकोराक्षी चिबुकप्रान्तचुम्बिनि ।
 नर्मोक्तिषु न शक्नोति स्थातुं लज्जानतानना ॥ ४२ ॥
 शङ्के तच्चित्तमक्लेशसाध्यं कुसुमधन्वनः ।
 काठिन्यं बहिरेवास्याः स्तनाभ्यां येन धारितम् ॥ ४३ ॥
 सा स्तनाञ्जलिबंधेन मन्मथं प्रथमागतम् ।
 करोतीवोन्मुखं बाला बान्धवं यौवनश्रियः ॥ ४४ ॥
 अस्त्यप्रतिसमाधेयं स्तनद्वंद्वस्य दूषणम् ।
 स्फुटतां कञ्चुकानां यन्नायात्यावरणीयताम् ॥ ४५ ॥
 कुम्भौ सदम्भौ करिणां कलशौ मन्दकौशलौ ।
 चक्रवाकौ वराकौ च तदीयकुचयोः पुरः ॥ ४६ ॥
 मुखेन्दुचन्द्रिकापूरप्ताव्यमानौ पुनःपुनः ।
 शीतभीताविवान्योन्यं तस्याः पीडयतः स्तनौ ॥ ४७ ॥
 तत्कुचौ चरतः किञ्चिन्नूनं मनसिजव्रतम् ।
 नित्योन्मुखौ यदासाते मौलिरत्नस्य भास्वतः ॥ ४८ ॥
 सा धारयत्यधीराक्षी दुर्वहं स्तनमंडलम् ।
 गर्वपर्वतमारूढश्चित्रं कुसुमकार्मुकः ॥ ४९ ॥
 तस्यास्तुङ्गस्तनच्छाया चकास्ति त्रिवलीतटे ।
 लीना तिमिरलेखेव वदनेन्दोरगोचरे ॥ ५० ॥
 अयं त्रयाणां ग्रामाणां निधानं मधुरध्वनिः ।
 रेखात्रयमितीवास्याः सूत्रितं कण्ठकन्दले ॥ ५१ ॥
 असावुद्वेललावण्यरत्नाकरसमुद्भवः ।
 जगद्विजयमङ्गल्यशंसः कुसुमधन्वनः ॥ ५२ ॥

श्रोत्रपीयूषगण्डूषैः काकलीकलगीतिभिः ।
 कण्ठः कुरिठतचातुर्यो विपञ्चीपञ्चमध्वनेः ॥ ५३ ॥
 कुसुमायुधकोदण्डे हस्तौ विस्तीर्णचक्षुषः ।
 अशोकपल्लवास्त्राणां प्रतिहस्तत्वमागतौ ॥ ५४ ॥
 नाहं धार्यमधीरान्नि मुखेन्दोः सम्मुखं त्वया ।
 इतीव लीलापद्मेन करेभ्याः कान्तिरर्पिता ॥ ५५ ॥
 आयूरेखां चकारास्याः करे द्रायीयसीं विधिः ।
 शौरङ्गीर्यगर्वनिर्वाहप्रत्याशः च मनोभुवः ॥ ५६ ॥
 गौराङ्गया भुजलावण्यमीलितं हेमकङ्कणम् ।
 कण्ठाश्लेषे वयस्याभिः काठिन्यादन्वमीयत ॥ ५७ ॥
 प्रकोष्ठवन्द्ये बिम्बोष्ठ्यास्तस्याः काञ्चनकङ्कणम् ।
 नालं वलयितं हस्ते हेमाब्जस्येव राजते ॥ ५८ ॥
 सौवर्णकङ्कणश्रेण्या भाति तद्बाहुकन्दली ।
 तूणचम्पकमौढ्येव पुष्पचापेन वेष्टिता ॥ ५९ ॥
 अङ्गुलीभिः कुरङ्गाद्याः शोभते मुद्रिकावलिः ।
 प्रोतेव बाणैः पञ्चेषोः सूक्ष्मलक्ष्यपरंपरा ॥ ६० ॥
 सहेमकटकं धत्ते सा करं पद्मतस्करम् ।
 पद्मिनीवल्लभस्येव मूले वेष्टितमंशुना ॥ ६१ ॥
 हस्ते चकास्ति बालायास्तस्याः कङ्कणमालिका ।
 मनः कुरङ्गबन्धाय पाशालीव मनोभुवः ॥ ६२ ॥
 कृशाङ्गयाः कुचभारेण दूरमुत्सारितौ भुजौ ।
 वहतः कलहाद्येव वाचालां वलयावलिम् ॥ ६३ ॥
 सरले एव दोर्लभे यदि चञ्चलचक्षुषः ।
 अमुग्धाभ्यो मृणालीभ्यां कथमाजहतुः श्रियम् ॥ ६४ ॥
 बाहू तस्याः कुचाभोगनिरुद्धान्योन्यदर्शनौ ।
 मन्त्रितं कथमेताभ्यां मृणालीकीर्तिलुण्ठनम् ॥ ६५ ॥

मुखारविन्ददत्तश्रीः सुतनोरुशोधरः ।
 कुरुते हारमाणिक्यप्रदीपान्पाण्डुरत्विषः ॥ ६६ ॥
 संततोदयसंध्येव वदनेन्दोरनिन्दिता ।
 तदोष्ठसुद्रा लावण्यसमुद्रस्येव विद्रुमः ॥ ६७ ॥
 मुखं वहति बन्धूकबन्धुरेणाधरेण सा ।
 पूर्णेन्दुमिव सोदर्यादङ्गलालितकौस्तुभम् ॥ ६८ ॥
 अधरोसौ कुरङ्गाद्याः शोभते नासिकातले ।
 सुवर्णनलिकामध्यान्माणिक्यमिव विच्युतम् ॥ ६९ ॥
 पुराणबाणत्यागाय नूतनास्त्रकुतूहलात् ।
 तन्नासा भाति कामेन तूणीवाधोमुखीकृता ॥ ७० ॥
 अमुष्य मुषिता लदलीश्चक्षुषेति न नूतनम् ।
 न वेद्मि कथयत्यस्याः कर्णे लग्नं किमुत्पलम् ॥ ७१ ॥
 सृगीसम्बन्धिनी दृष्टिरसौ यदि न सुभ्रुवः ।
 धावति अवणोत्तंसलीलादूर्वाङ्कुरे कुतः ॥ ७२ ॥
 तस्याः अवणमार्गेण चलिते यदि लोचने ।
 कुतः प्रकामधवले धत्तः कृष्णानुरक्तताम् ॥ ७३ ॥
 श्रूयतां कौतुकं सोपि स्मरः शृङ्गारिणां गुरुः ।
 अमुष्याः शिष्यतामेति अवणोन्मुखयोर्दृशोः ॥ ७४ ॥
 सौन्दर्यपात्रे वक्त्रेन्दौ कुरङ्गासङ्गभीतया ।
 सूत्रितौ ओत्रपाशाभ्यां पाशाविव सृगीदृशा ॥ ७५ ॥
 किञ्चित्सविभ्रमोदञ्चिभ्रूलता भाति भामिनी ।
 बालक्रीडाप्रतिद्वंद्वि तर्जयन्तीव यौवनम् ॥ ७६ ॥
 भास्वत्कुण्डलमाणिक्यप्रभाप्रतिहतेरिव ।
 नताङ्गयाः अवणोत्संगमारूढा नयनद्वयी ॥ ७७ ॥
 भ्रूलेखायुगलं भाति तस्याश्चटुलचक्षुषः ।
 पत्रद्वयीव हरिता नासावशस्य निगता ॥ ७८ ॥

नासावंशविनिर्मुक्तमुक्ताफलसनाभिना ।
 भाति भालतलस्थेन बालाचन्दनविन्दुना ॥ ७९ ॥
 तस्याः कचभरठ्याजातनयस्नेहलालितः ।
 आरूढः पार्वतीबुद्ध्या गुह्यबर्हीव मूर्धनि ॥ ८० ॥
 गरडे मण्डनमात्मनैव कुरुते वैदग्ध्यगर्वादसौ
 त्यक्त्वा हेमविभूषणानि तनुते ताडीदलेष्वाग्रहम् ।
 मन्दा कन्दुकखेलनाय भजते शारीषु शिखारसं
 तन्व्या चित्रमकारड एव लटभाभावे निबद्धो भरः ॥ ८१ ॥
 शृङ्गालीमुदरे क्षिपन्ति शतशः पद्मानि शस्त्रीमिव
 प्रत्यागच्छति लङ्घनार्थमसकृद्द्वयोमाङ्गणं चन्द्रमाः ।
 वक्त्रेणापहृते कुरङ्गकट्टशस्त्रैर्लोक्यरूपोच्चये
 प्रत्यावर्तनवाञ्छयेव कति न क्लेशं समातन्वते ॥ ८२ ॥
 दायादत्वं मनसिजधनुर्भूविलासस्य धत्ते
 योगक्षेमौ वहति नयनद्वन्द्वमिन्दीवराणाम् ।
 तद्वात्राणां पुनरिह जगज्जैत्रलावण्यभाजा-
 माभात्यग्रे मलवदखिलं मूलवर्णं सुवर्णम् ॥ ८३ ॥
 दृशोः सीमावादः श्रवणयुगलेन प्रतिकूलं
 स्तनाभ्यां संरुद्धे हृदि मनसिजस्तिष्ठति बलात् ।
 नितम्बः साक्रन्दं क्षिपति रशनादाम परतः
 प्रवेशस्तन्वङ्ग्या वपुषि तरुणिम्नो विजयते ॥ ८४ ॥
 दोलायां जघनस्थलेन चलता लोलेक्षणा लज्जते
 धत्ते दिक्षु निरीक्षणं स्मितमुखी पारावतानां रुतैः ।
 स्पर्शः कण्ठककोटिभिः कुटिलया लीलावने नेष्यते
 सज्जं मौग्ध्यविसर्जनाय सुतनोः शृङ्गारमित्रं वयः ॥ ८५ ॥
 लास्याभ्यासमिषेण चित्रमनया गात्रार्पणं शिक्षितं
 लीलापञ्चमदोलनेन दलिता कण्ठस्य कुण्ठा गतिः ।

किं वा वर्णनया समस्तलटभालंकारतामेष्यति
स्वल्पेनैव परिश्रमेण रमणी देवस्य रामागुरोः ॥ ८६ ॥

वक्त्रं निर्मलमुन्नता कुचतटी मध्यप्रदेशः कृशः
श्रीणीमण्डलमङ्गनाकुलगुरोर्देवस्य सिंहासनम् ।
कृत्वा चारुदृशश्चतुष्टयमिदं तुष्टाव मन्ये विधि—
हर्षाद्गद्गदगद्यपद्यरचनागर्भैश्चतुर्भिर्मुखैः ॥ ८७ ॥

इत्थं कर्णरसायनं श्रुतवतः कर्णाटपृथ्वीपते-
राकृष्टस्य कुतूहलेन पुनरप्याकाङ्क्षतस्तत्कथाम् ।

प्राप्तः पार्श्वममुष्य पल्लवयितुं तामेव वार्त्तां पुनः
सिञ्जचाचालनचञ्चलः श्रुतिगलत्ताडङ्गुपत्रः स्मरः ॥ ८८ ॥

इति श्रीविक्रमाङ्कदेवचरिते महाकाव्ये त्रिभुवनमल्लदेविद्यापति-

काश्मीरकभट्टविल्हणविरचितेष्टमः सर्गः ॥ ८ ।'

विजृम्भबाणेष्वथ पञ्चबाणकोदण्डसिञ्जाघनगर्जितेषु ।
 विलासिनी मानसमाविवेश सा राजहंसीव नरेश्वरस्य ॥१॥
 क्षिप्ते पदे चारुदृशा विशन्त्या बालप्रबालप्रतिमल्लभासि ।
 चेतः क्षितीन्दोः स्फटिकावदातमुपाधियोगादिव रक्तमासीत् ॥२॥
 वित्रासितश्चैत्रसमीरणेन मयूखदण्डैः स्थलितः सुधांशोः ।
 नासौ बभूव स्मरपार्थिवस्य कस्याः पदं रोषविभीषिकायाः ॥३॥
 गृह्णन्गुणानह्नि विभावरीणां दिनप्रशंसां विदधन्निशासु ।
 क्रमादसौ तां क्षितिमाचकांक्ष यत्र द्वयं नास्ति दिनं निशा च ॥४॥
 त्रैलोक्यसंमोहनविद्ययेव तया जयास्थां महतीं दधानः ।
 तं धन्विनां धुर्यमपि प्रहर्तुं विलासधन्वा धनुराचकर्ष ॥ ५ ॥
 निजप्रभानिन्हुतचन्द्रभासा प्रभातलक्ष्म्येव परिस्फुरन्त्या ।
 तया समानीयत पाण्डिमानं चालुक्यभूपालकुलप्रदीपः ॥६॥
 शृङ्गाररत्नाकरवेलमेव तया प्रवेशे विहिते तरुण्या ।
 मवानुरागेण मनस्तदीयं रत्नोत्करेणैव सनायमासीत् ॥ ७ ॥
 असौ भवित्री सुभगा नतभ्रूः करिष्यते पञ्चशरः प्रसादम् ।
 आन्दोलितोभूदिति चिन्तयासौ त्रैलोक्यचिन्ताहरणक्षमोपि ॥८॥
 यथा यथा निःश्वसिति स्म राजा निरङ्कुशं कार्श्यमदर्शयच्च ।
 तथातथा जागरयन्धनुज्यां भेजे जयास्थां भगवाननङ्गः ॥ ९ ॥
 जाते धरित्रीतिलके चिरेण प्रकोपपात्रे मकरध्वजस्य ।
 प्रकाशयन्तीव पतिव्रतात्वं पराङ्मुखी तत्र रतिर्बभूव ॥१०॥
 उर्वीपतेः पार्वणचन्द्रवक्त्रा समुद्रहन्ती हृदये निवासम् ।
 विकासदीक्षामपराङ्गनानां सरोजिनीनामिव संजहार ॥११॥
 नितम्बबिम्बस्य नितम्बत्याः प्रकामविस्तारवशादिवास्य ।
 पृथ्वीपतेरुत्तमनायिकापि न कापि लेभे हृदयेवकाशम् ॥१२॥
 नितान्तमेकान्तनिषेवणेन द्वेषेण चान्तःपुरसुन्दरीषु ।
 प्रच्छादनाय विहितमपि शोणीपतिस्ताडितद्विगिडमोभूत् ॥१३॥

ताडीदले कर्णपरिच्युतेपि कन्दर्पलेखभ्रममाससाद ।
 उत्तंसमांगच्छति षट्पदेपि प्रत्याशया कर्णमदत्त देवः ॥१४॥
 आकाशगर्भां गिरमाचकांश्च विलोकयामास विलासभित्तिः ।
 तदीयवार्त्ताश्रवणाभिलाषात्कुत्रार्थितां प्राप न पार्थिवेन्द्रः ॥१५॥
 सा कीदृशीति नितिवल्लभस्य कुट्टहलेनोत्तरलीकृतस्य ।
 आलिख्य चेतःफलके मनोभूरदर्शयत्सायकतूलिकाभिः ॥ १६॥
 प्रारम्भि रम्भाललितोरुकान्तेरुपायनीकृत्य मुखं प्रियायाः ।
 सेवा सहेवाकविलोचनस्य पृथ्वीभुजंगस्य दिगङ्गनाभिः ॥१७॥
 मौनग्रहे तस्य परिग्रहेण चित्रार्पितेनेव भियावतस्थे ।
 लीलाशुकानामपि शङ्कितानां न निर्ययुः कण्ठतटाद्वचांस्त्रिः ॥१८॥
 निरीक्षमाणः सरसोक्तिदत्तां दूतीमसौ वारपुरंध्रिमध्ये ।
 मौख्यचर्यामपि मेखलासु महान्तमुद्गावयतिस्म दोषम् ॥१९॥
 अचिन्तनीयं तुहिनद्रवाणां श्रीखण्डवापीपयसामसाध्यम् ।
 असूत्रयत्पत्रिषु पारसीकतैलाग्निसेतस्य परं मनोभूः ॥ २० ॥
 आन्ते च निद्रालसलोचने च शून्ये च पञ्चेषुरिषून्विमुञ्चन् ।
 न तत्र चित्रं गणयांस्बभूव क्षत्रव्रतस्य क्षतिमेकवीरः ॥ २१ ॥
 सैका पताकां सुभगासु लेभे यया हतः कुन्तलकामदेवः ।
 आसीत्परं पञ्चशरः प्रतापी तस्यापि यस्तापयिता बभूव ॥२२॥
 लग्नामिवाङ्गे लिखितामिवाग्रे चक्रभ्रमेशेव परिभ्रमन्तीम् ।
 क्षपासु लब्धक्षणात्रनिद्रस्तामेव राजीवमुखीं ददर्श ॥२३॥
 चन्द्रातपाच्चन्दनपङ्कवापीं ततस्तमस्मादपि तां जगाम ।
 तस्येति बह्वयः स्मरतापितस्य गतागतैरेव गतास्त्रियामाः ॥२४॥
 ओत्रामृतस्य स्फटिकप्रणालीं दिव्याम्बुधारां स्मरचातकस्य ।
 वार्त्तां गृहीत्वा हरिणोक्षणायाश्चरः क्षमाभर्तुरथाजगाम ॥२५॥
 कथारसस्येव मुखस्थितस्य धाराः किरन्दन्तस्यूखभङ्ग्या ।
 प्रहृषविस्फारितवक्त्रकान्तिः स कुन्तलक्ष्मातिलकं बभाषे ॥

अचन्द्रजा नेत्रचकीरवृत्तिरपुष्पनिर्माणशस्त्रम् ।
 रागस्य लोकत्रयरञ्जनाय विद्येव विद्याधरराजकन्या ॥२७॥
 अकृत्रिमाद्वा गुणपक्षपाताद्विधेः समायोगकुतूहलाद्वा ।
 देव त्वदाकर्णनमात्रकेण सा त्वन्मयं पश्यति जीवलोकम् ॥२८॥
 अपारमापूरयता पृषत्कैस्तनिम्नि मग्नं वपुरुत्पलादयाः ।
 लक्ष्येषु लब्धः कुसुमायुधेन बालाग्रसूक्ष्मेषु परः प्रकर्षः ॥२९॥
 तथा गता चम्पकदामगौरी शरीरयष्टिः कृशतां कृशाङ्गयाः ।
 यथा गलच्चापमनोरथोस्यां सौर्वीलतास्थां मदनः करोति ॥३०॥
 नूनं स्मरः सौगतदर्शनोत्थं रहस्यमस्याः कथयाम्बभूव ।
 त्वया विना व्यर्थमनोरथा यदात्मन्यवज्ञां प्रकटीकरोति ॥३१॥
 दूरं गता कामुककर्मवार्त्ता तस्यास्तनुं तन्तुकृशं वहन्त्याः ।
 नितान्तमप्राणतया सृगाक्षी शिञ्जापि जाता न मनोभवस्याः ॥३२॥
 प्राप्ता तथा तानवमङ्गयष्टिस्त्वद्विप्रयोगेण कुरङ्गदूष्टेः ।
 धत्ते गृहस्तम्भनिवर्तितेन कम्पं यथा श्वाससमीरणेन ॥३३॥
 शीतांशुबिम्बप्रतिबिम्बभङ्ग्या कुरङ्गदूष्टेः कुचकुम्भपीठे ।
 स्मरानलद्रावितहारदाममुक्ताफलानामिव पिरडमासीत् ॥३४॥
 वातायनाद्गच्छति चित्रवेश्म तस्माद्दनान्तं वलभीं ततोपि ।
 एकत्र न क्वापि पदं करोति सा मन्मथास्कन्दविशङ्कितेव ॥३५॥
 आज्ञापितः स्वप्नविधौ हरेण स्वयं वरोस्याः क्रियतां त्वयेति
 तस्याः पिता कस्यचिदर्थिभावं न भूमिभर्तुः सफलं विधत्ते ॥३६॥
 पिता तदीयस्त्वयि सान्द्ररागः किं प्रार्थनाभङ्गभयान्न वक्ति ।
 भवादृशानां प्रणयं हि लब्ध्वा प्रयान्ति कन्याः कुलभूषणत्वम् ॥३७॥
 स्वयं वरस्यावसरोपि जातः प्रसीद भूपाल कुरु प्रयाणम् ।
 असौ जयश्रीरिव ते द्वितीया सर्वान्विनिर्भूय वधूत्वमेतु ॥३८॥
 श्रुत्वेति तुष्टः स जगाम तत्र तुरङ्गमैरेव जवोत्तरगैः ।
 स्वयं वरायातनरेन्दुचक्रा सा यत्र पुष्पायुधराजधानी ॥३९॥

अमानिवाङ्गेषु मुदः प्रकर्षात्प्रत्युद्ययौ तं जनकः कुमार्याः ।
 अनुष्ठितं सम्यगुपायवद्विनीतः परिस्पन्दमिवार्थसार्यः ॥४०॥
 निधानलाभादिव हर्षमाप स कुन्तलेन्दुप्रणयान्नरेन्द्रः ।
 कन्यापितृणां पदमुत्सवस्य न श्लाघ्ययजामातृसमंसमस्ति ॥४१॥
 प्रणम्य तेनाथ निवेद्यमानमार्गः कृताशेषयथोचितेन ।
 श्रीकुन्तलेन्द्रः प्रविवेश भूमिं स्वयंवरोत्कंठितराजचः ॥४२॥
 स दुन्दुभीनां धननिभिः सतूर्यैः प्रकाशयमानाभिनवोत्सवायाम् ।
 प्रविश्य तस्यां मुवि कौतुकेन कान्तासमन्वेषणतत्परोभूत् ॥४३॥
 सोपानपंक्तिं स विलङ्घ्य तत्र तरंगमालामिव राजहंसः ।
 सौवर्णपद्मप्रभमारुरोह हेमासनं मन्मथशासनेन ॥ ४४ ॥
 रराज भूपैः परिवारितोसौ शुभ्रे स्थितः सद्गनि कुन्तलेन्द्रः ।
 यूथे प्रविष्टः करिपोतकानां दुग्धाब्धिमध्येस्थ इवामरेभः ॥४५॥
 तस्मिन्प्रविष्टे नरनाथसिंहे कैलासशुभ्रं भवनाङ्गणं तत् ।
 सा दुर्लभा चन्द्रमुखी नरेन्द्रैः सिंही कुरंगैरिव मन्यतेस्म ॥४६॥
 वितानरत्नेषु च कुट्टिमे च बिम्बेन राज्ञां प्रतिबिम्बितेन ।
 स्वयंवरोत्साहसभा बभासे संप्राप्तलोकत्रयकामुकेव ॥४७॥
 मञ्जुषे रत्नांकुरदंतुरेषु भूषामणीनां च कदम्बकेषु ।
 रूपप्रकर्षार्पिर्धितया मुखानि प्रेक्षाबभूवुः शतशः क्षितीशाः ॥४८॥
 मुक्तावितानेषु नरेश्वराणामतिष्ठदुच्चैः प्रतिबिम्बपङ्क्तिः ।
 कस्यापि सज्जीकृतपुष्पवर्षा सौभाग्यसीम्नस्त्रिदशावलीव ॥४९॥
 मुक्ता फलसूग्भिर वाप शोभां पतिंवरा विश्रमवेदिका सा ।
 चन्द्रो बहुस्त्रीक इति प्रवक्तुं भियेव ताराभिरुपास्यमाना ॥५०॥
 ये भूभुजः प्राज्यतरेण धाम्ना बभूवुरुद्द्योततिभाः सभायाम्
 ते विक्रमद्वमापतिसंनिधाने प्रभातदीपप्रतिमामवापुः ॥५१॥
 सुवर्णरेखारमणीयदेहा देवस्य रामा नयनायुधस्य ।
 अनेकधृत्वीपतिभाग्यहेमपरीक्षणार्थं कवपट्टिकेव ॥५२॥

मुखेन लज्जाभिनयप्रगल्भा लीलालवन्यञ्चितकंधरेण ।
 प्रत्यादिशन्तीव दिवि स्फुरन्तमनेकदोषोपहतं मृगाङ्गम् ॥५३॥
 एकां भ्रुवं विश्रमराजधानीं सलीलमर्थोन्नमितां दधाना ।
 प्रतारकस्याखिलपार्थिवानां संतर्जनायेव मनोभवस्य ॥५४॥
 प्राणेशकण्ठप्रणयोद्यतायाः करस्थितायाः कुसुमस्रजोपि ।
 ईर्ष्यावशेषादिव धारयन्ती साकूतवक्रेक्षणमाननेन्दुम् ॥५५॥
 माणिक्यभित्तिप्रतिमानिभेन सौभाग्यहेतोर्विधृतेव दिग्भिः ।
 मनोभवेनापि निजोत्पलाक्षीवैराग्यभाजेव निषेव्यमाणा ॥५६॥
 निजतिषा भूषणरत्नमालां समुल्लसन्त्या मलिनां विधाय ।
 निवारयन्ती प्रतिबिम्बभङ्ग्याप्यङ्गेषु सामान्यनरेन्द्रसङ्गम् ॥५७॥
 अंसस्थले हारलताञ्चलस्थविलोलनेत्रच्छट्या सनाथा ।
 त्रिलोककान्ताजनदर्पभङ्गप्रसूतया कीर्तिपताकयेव ॥ ५८ ॥
 सहागतानीव जगन्मनांसि दाक्षिण्ययोगात्प्रतिपालयन्ती ।
 कन्दर्पमत्तद्विरदेन्द्रभङ्ग्या विलम्ब्य किञ्चिद्दती पदानि ॥५९॥
 कपूरवल्लीदलवीटिकायां व्यापारितव्याकुलवामहस्ता ।
 कपोलवल्गुपुलकाङ्कुरश्रीर्विहस्य किञ्चित्परिभावयन्ती ॥६०॥
 पदं प्रमोदालसराजहंसविलासिनीचङ्क्रमणक्रमेण ।
 संक्रान्तरागेषु निवेशयन्ती नरेन्द्रचित्तेष्विव कुट्टिनेषु ॥६१॥
 मनोभवज्यावलयानुकारिकर्णद्वयावासितनेत्रपत्रा ।
 वेणीं स्फुरत्पुष्पशिलीमुखाढ्यां कन्दर्पमस्त्रामिव धारयन्ती ॥६२॥
 विलोलचूर्णालकवल्लरीणां सङ्गैः स्पृशन्तीं कलिकानुकारम् ।
 श्रीखण्डलेखामलिके वहन्ती भ्रूकामुके मन्मथकेतकास्त्रम् ॥६३॥
 आविर्बभूवाथ पतिंवरा सा क्षौमाम्बरप्रस्फुरदुत्तरीया ।
 मृगेक्षणा दुग्धपयोधिमुग्धतरंगलेखानुगतेव लक्ष्मीः ॥६४॥
 हेमाद्रिमावर्त्य कृतेव धात्रा विसारिभिर्या किरणैस्तदीयैः ।
 सा सङ्गता रुद्रतले नताङ्गी सर्वस्य लोभं सुभगा ततान् ॥६५॥

विलोकयामास विलासपद्मं सगर्वमीषन्मुकुलायिताक्षी ।
 दिक्पालहेतोरिव दूतकर्म दिग्ङ्गनानामवधारयन्ती ॥ ६६ ॥
 स ताडितश्चेतसि मन्मथेन निःशङ्कमाक्रान्तशरासनेन ।
 विलोक्य तां विश्रमवैजयन्तीमचिन्तयत्कुन्तलचक्रवर्ती ॥ ६७ ॥
 अनर्घ्यलावण्यनिधानभूमिर्न कस्य लोभं लटभा तनोति ।
 अवैमि पुष्पायुधयामिकोस्यामविश्वसन्न क्षणमेति निद्राम् ॥ ६८ ॥
 इयं विलासदुमदोहदश्रीरियं सुधा यौवनदुग्धसिन्धोः ।
 लावण्यमाणिक्यरुचिच्छटेयमियं मनःकार्मणचूर्णमुष्टिः ॥ ६९ ॥
 सम्पूर्णचन्द्रोदयनित्यराका लीलारसानां परिपाकभूमिः ।
 इयं मनोजन्मनराधिपस्य त्रैलोक्यसाम्राज्यफला तपःश्रीः ॥ ७० ॥
 नीरन्ध्रविस्फूर्जदन्तर्गजार्जः पयोधरश्रीरियमेतदीया ।
 विलासवैदूर्यनवांकुराणां प्रयाति नित्योद्गमकारणत्वम् ॥ ७१ ॥
 कान्त्या दरिद्रत्वमुपैति चन्द्रः किमस्ति तत्त्वं विक्रचोत्पलेषु
 न वेद्मि विश्वास्य कथं सृगाक्ष्या सौन्दर्यसृष्टिमुषिता विधातुः ७२
 इयं मयि न्यस्यति नेत्रमालां मुहुः सखीनां किमपि ब्रुवाणा ।
 सत्यैव साभूदनुरागवार्ता चिरात्प्रसन्नो भगवाननङ्गः ॥ ७३ ॥
 जघान पादेन सखीं सखेत्तमाकृष्य हारं मुहुरामुमोच ।
 सा दर्शने कुन्तलपार्थिवस्य न कारिता किं मकरध्वजेन ॥ ७४ ॥
 तदीयवक्त्रेन्दुविलोकनेन सान्दोल्यसद्रागययोनिधीनाम् ।
 तत्रागतानां पृथिवीपतीनामासन्विचित्राणि विचेष्टितानि ॥ ७५ ॥
 उत्कृष्यमाणं निजहारदास समस्तभूपालविभूषणेभ्यः ।
 वक्षःस्थलेनोन्नमितेन दूरं कश्चिन्नरेन्द्रः प्रकटीचकार ॥ ७६ ॥
 सावज्ञमुत्तार्य सुवर्णमूत्रं देहप्रभानिन्हुतशोभमेकः ।
 मुक्ताकलापं हृदये बबन्ध पतिंवराप्राप्तिमनोरथं च ॥ ७७ ॥
 चूडामणोः कोपि परिश्रयस्य स्थाने निवेशाय कृताभिलाषः ।
 लीलसरोजं मुकुटेऽबन्धय पुष्पकुमारीं परिहास्यमानः ॥ ७८ ॥

मञ्जुचान्तरे संततमग्रपादं प्रसारयामास सगर्वमेकः ।
 ह्रस्वासिधेनुश्रमसूचनार्थं मान्दोलयामास च पाणियुग्ममृग॥
 अनुद्गतस्वेदमपि क्षितीन्दुरुद्धृत्य कपूररजोभिरङ्गम् ।
 कर्णद्वये कुण्डलयोश्चकार पृथैव कश्चित्परिवर्तनानि ॥ ८० ॥
 जघान ताम्बूलकरङ्कवाहं करेण कूजद्वलयेन कश्चित् ।
 लिलेखः ताम्बूलदलं नखैश्च प्रतारितः पुष्पशरासनेन ॥ ८१ ॥
 गोष्ठीमिषेण स्वयमेवमेव प्रकाशयन्वाचि पटुत्वमन्यः ।
 आकृष्य ताम्बूलकरङ्कमध्यात्कपूर्दानं विदधे बहुभ्यः ॥ ८२ ॥
 हेमासनं वस्त्रनिवेशनेन तुङ्गत्वमानीय वृथा ववल्ग ।
 नवीनतारुण्यनिवेदनार्थमजातकूर्चेन मुखेन कश्चित् ॥ ८३ ॥
 निक्षिप्य ताम्बूलकरङ्कवाहपृष्ठे शरीरं सविलासमेकः ।
 उदञ्चितशूलतिकापताकमकारणादेव मुखं चकार ॥ ८४ ॥
 जृम्भावशोत्तस्मितहस्तयुग्मसंघट्टलीलास्फुटदङ्गुलीकः ।
 कश्चिन्नपत्योपरि विष्टरस्य दुर्वारकामग्रहमोहितोभूत् ॥ ८५ ॥
 कण्ठस्फुरत्पञ्चमकाकलीकः कश्चिद्द्व्यलीकस्मितमाततान ।
 संग्रथ्य कश्चित्कतिचित्पदानि गाथाकवित्वं कथयांबभूव ॥ ८६ ॥
 वैतालिकानां तुमुलं निवार्य ततः कुमार्याः सुकुमारकण्ठी ।
 उदाजहार प्रतिहाररक्षी क्रमेण चक्रं पृथिवीपतीनाम् ॥ ८७ ॥
 अर्थेषु यो मूर्धसु खण्डितेषु खङ्गं कठोराहतिकुण्ठधारम् ।
 श्रीकण्ठकेयूरभुजङ्गराजफणमणौ घर्षितुमाचकात् ॥ ८८ ॥
 कृत्वा हठाद्वामकरे हराद्रिं कङ्कलदोर्मण्डदुर्मदो यः ।
 हिमालयोन्मूलनकौतुकेन भेजे भुजं दक्षिणमुत्तरंगम् ॥ ८९ ॥
 लङ्कापतेस्तस्य सुखाम्बुजानि भोगारूपदं यस्य शिलीमुखानाम् ।
 रामस्य तस्यैष कुले कुमारः कुमारि नेत्रप्रणयी तवास्तु ॥ ९० ॥
 अनेन सार्धं सरयूवनान्ते कूजन्मयूरीमुखरे विहृत्य ।
 विलासवातायनसेवनेन आध्यामयोध्यां नगरीं विधेहि ॥ ९१ ॥

तयोपदेशः स कृतः कुमार्यां वृथागमन्ती च द्वयोपकारः ।
 प्रेमाणि जन्मान्तरसंचितानि प्रादुर्भवन्ति क्वचिदेवमेव ॥९२॥
 प्रदर्शयामास ततः कुमार्यां क्षितीशमन्यं प्रतिहाररक्षी ।
 चूतानुबन्धे मधुपाङ्गनाया मुग्धं मधुश्रीरिव कर्णिकारम् ॥९३॥
 यस्याहवे साहसलाञ्छनस्य मौर्वीरवः प्राप्य बिलोदराणि ।
 क्षणेन पातालतलस्थितानां शौर्यदीर्घवार्तां कथयांबभूव ॥९४॥
 सोयं रणे नर्तयिता कबन्धान्मदान्धभूपालसहस्रसेव्यः ।
 विलोक्यतां सुन्दरि चेदिराजस्तवास्तु दृष्टिः स्मरवैजयन्ती ॥९५॥
 तयेत्यमुक्ता न परं कुमारी नालोकयामास विलासिनं तम् ।
 ताम्बूलमुत्सृज्य मुखाम्बुजस्य निकारमार्गेण निराचकार ॥९६॥
 अथान्यमुद्दिश्य नरेन्द्रपुत्रमुत्तमस्तसारङ्गविलोलदृष्टिः ।
 सांमुख्यमानीयत मानिनी सा वाक्यैरुदारैः प्रतिहाररक्ष्या ॥९७॥
 कन्ये समालोक्य कान्यकुब्जमकुब्जकीर्तिं नरनाथमेनम् ।
 ककुब्जये यस्य धरापरागैर्भवन्ति वारां निधयः स्थलानि ॥९८॥
 तस्मात्समाकृष्य नतानना सा दृष्टिं क्षिपन्ती कुचकुम्भपीठे ।
 तस्याभ्यधत्त क्षितिवल्लभस्य स्थूलत्वमङ्गेष्विव भूषणस्य ॥९९॥
 प्रलोभयन्ती गतिभिः समस्ताः सा राजहंसान्कलनूपुराभिः ।
 किञ्चित्पुरश्चक्रमणप्रवृत्ता भूयस्तया सस्मितसम्यधायि ॥१००॥
 उत्कर्षरेखां दृढकीलितस्य यत्पत्रिणः पौत्रिणि शङ्कमानः ।
 शीघ्रं हरः सूकरदेहरन्ध्रास्त्रीलाकिरातः शरमुच्चखान ॥ १०१ ॥
 अशङ्कितः शङ्करमल्लयुद्धे यः स्वेदधारास्त्रुनिवारणाय ।
 भस्मोत्करं विस्मयघूर्णितस्य कक्षान्तरात्तस्य समाचकर्ष ॥१०२॥
 पार्थस्य तस्यैष कुलेष प्रसूतः प्रभूतशौर्यो नृपतिः प्रतापी ।
 एनं समालोक्य रन्तुकामा चर्मणवतीतीरवनस्थलेषु ॥१०३॥
 क्षेमं तदीये शिरसीवृद्धपादं समुत्क्षिपन्तीं गमनार्थमग्रे ।
 उद्दिश्य सा सलकुमारमन्यं कन्यां समलभा पुनरावभाषे ॥१०४॥

शृङ्गाणि नूनं मिलितानि यस्य स्वर्गप्रतोलीकपिशीर्षकाणाम् ।
 अत्र स्थितानां कथमन्यथा द्यौः क्रीडागृहप्राङ्गणभङ्गिमेति ॥१०५॥
 तस्यैष कालिञ्जरभूधरस्य श्रीनीलकण्ठस्य विलासधाम्नः ।
 भर्ता भुजावर्तितराजचक्रः कटाक्षचक्रप्रणयी तवास्तु ॥ १०६ ॥
 चेतस्यविद्वे कुसुमायुधेन मुक्ताफले तन्तुरिव प्रवेशम् ।
 यतो न लेभे स नृपस्ततोस्याः सान्यं विदग्धा पकटीचकार ॥१०७॥
 शौर्यप्रियेणाहवनिःस्पृहाणां येन प्रतिक्षोणिभृतां निवासाः । ॥
 लीलाचपेटक्षतकुञ्जराणां पदे पदे केसरिणेव लब्धाः ॥१०८॥
 गोपाचलक्ष्मापतिरेकवीरः स एष पृथ्व्यामवदातकीर्तिः
 स्वयंवरस्रग्विनिवेशदूती तवात्र नेत्रोत्पलमालिकास्तु ॥१०९॥
 सा प्रार्थितान्यार्थमनङ्गबाणैः कमप्यलब्ध्वा परिहारहेतुम् ।
 पादेन वाचालितनूपुरेण जगाद मौख्यमिवास्य दोषम् ॥११०॥
 मध्येन येषां वसुधापतीनां जगाम सा कामवशीकृतानम् ।
 स्वयंवरस्रग्रजसेव पूर्णास्तेषां दृशः साश्रुजला बभूवुः ॥१११॥
 यद्वैरिभूपालविलासिनीनां कपोलपालीषु विपाण्डुरासु ।
 भवन्ति लम्बालकवल्ग्वरीभिः सशैवलानीव दृशोः पयांसि ॥११२॥
 यस्य प्रतापोग्निरपूर्वं एव जागर्ति भूभृत्कटकस्थलीषु ।
 यत्र प्रविष्टे रिपुपार्थिवानां तृणानि रोहन्ति गृहाङ्गणेषु ॥११३॥
 स एष लीलावति मालवेन्द्रस्तवात्र मन्त्री कुसुमायुधोस्तु ।
 लीलावनेस्ते विदधातु तोषममुष्य धारा कुलराजधानी ॥११४॥
 निरादरां तत्र ततो वितर्क्य नासाग्रसंकोचितया दृशेव ।
 गत्वा पुरः सा कतिचित्पदानि स्मृत्या हसन्तीमवदत्कुमारीम् ॥११५॥
 निशम्य तुक्खारखुरक्षतायाः क्षितेस्तनुत्वादिव यस्य कीर्तिम्
 संभूय गायन्ति फणीन्द्रकन्याः संगीतशालासु भुजंगभर्तुः ॥११६॥
 सोऽयं गुणग्राहिणि गुर्जरेन्दुः स्वबाहुवीर्यार्जितराजलोकः ।
 अत्रास्तु दृष्टिस्तव जीरजसि प्रसन्नपुष्पायुधमुपवृष्टिः ॥११७॥

लीलाम्बुजेन भ्रमरान्निपन्ती तस्य पतिक्षेपमसौ चकार ।
 उवाच चैनां पुरतः प्रविश्य किञ्चित्सगर्वा प्रतिहारगोप्त्री ॥११८॥
 श्रीखण्डचर्चापरिपाण्डुरोयं पाण्डवः प्रकामोन्नतचारुदेहः ।
 क्षीरोदधिक्षीरपरिप्लुतस्य चातुर्यमाचामति मन्दराद्रेः ॥११९॥
 अनेन मैत्रीं यदि मन्यते ते मनोभवस्तामरसायताक्षि ।
 लीलावने चन्दनपादपानां श्रयन्तु नित्यं मलयानिलास्त्वाम् ॥१२०॥
 तत्रापि साभूद्गुणभाजनेपि पराङ्मुखी श्रीरिव भाग्यहीने ।
 जगादभूयः पटुवादिनी सा बालां प्रवालाधिकपाटलौघीम् ॥१२१॥
 लीलावगाहं जलधौ विधाय वेलावनान्तेषु विहारभाजाम् ।
 दिग्वारणानामवतारतां ये करेणुकारोहणतः प्रयाताः ॥ १२२ ॥
 ते जैत्रयात्रासु महाभटस्य यस्य स्फुटद्दानजलाः करीन्द्राः ।
 दिग्दन्तिसंदर्शनवाञ्छयेव भ्रमन्ति सर्वाणि दिगन्तराणि ॥१२३॥
 रत्नोत्करैः संततमर्थिसार्थं यं पूरयन्तं प्रतिषेधतीव ।
 जलद्विपानां मदङ्गिण्डिमत्वं गतेन मन्द्रध्वनिना पयोधिः ॥१२४॥
 क्षितौ नमन्त्यां पृथनाभरेण यः प्रोच्छलद्भीतिपरंपरस्य ।
 शैलानुकारैः करिभिस्तटस्थैर्बध्नाति पालीमिव दक्षिणाब्धेः ॥१२५॥
 वमन्ति पीतं सममब्धितोयैर्यस्योच्छलच्छीकरडम्बरेण ।
 पदाहतित्रुत्यदरिक्तशुक्तिमुक्ताफलस्योदमिव द्विपेन्द्राः ॥१२६॥
 यान्तीषु यद्द्वारि विलासिनीषु करेणुभिः पूरितदिक्तीभिः ।
 दिनेपि दिक्पालपुरीगवाक्षाः प्रक्षालनं चन्द्रिकया लभन्ते ॥१२७॥
 स एष चोलश्चपलाक्षि राजा जयोत्सवैर्यस्य दिशां मुखानि ।
 स्फूर्जद्यशःपुञ्जतया स्थितानि मङ्गल्यशङ्खानिव पूरयन्ति ॥१२८॥
 विलासविद्याधरराजहंसं कुहूष्व दोःपञ्जरबद्धमेनम् ।
 वातायनैः केलिविमानकल्पैस्तवास्तु काञ्ची नयनोत्सवाय ॥१२९॥
 तमित्थमन्यत्र कृताग्रहा सा विलङ्घ्य चालुक्यनृपोन्मुखाभूत् ।
 उत्तालवेलापस्थितानामपि तरंगिणी नोज्झति पूर्वभागम् ॥१३०॥

चालुक्यपृथ्वीपतिकृष्यमाणं नितान्तदीर्घं नयनाञ्जलेस्याः ।
 निर्वापिताशाः पृथुदीपवर्तिधूमैरिवान्ये मलिना बभूवुः ॥१३१॥
 तत्र क्षणे कोपि जगाद राजा पराङ्मुखोऽस्यां प्रियजानिरस्मि ।
 कश्चिद्दिनोदाद्विदपार्थिवानां विलोकनायागमनं शशंस ॥१३२॥
 त्वयाहमानीय विडम्बितोऽत्र मिथ्येति कश्चित्सचिवं निनिन्द
 वज्राहतानामिव भूपतीनां ययुः परेषां नतिमाननानि ॥१३३॥
 दूष्टिः समस्तात्क्षितिपालचक्राञ्चालुक्यसिंहासनमण्डनं तम् ।
 विविच्य जग्राह कुरङ्गकाक्ष्याः क्षीरं जलौघादिव राजहंसी ॥१३४॥
 अथ प्रतीहारधुरंधरा सा जगाद तां दन्तरुचिप्रवाहैः ।
 अन्यक्षमापालविलोकनेत्यं प्रक्षालयन्तीव कलङ्कमस्याः ॥१३५॥
 जानाति राजीवमुखि ग्रहीतुं दूष्टिस्त्वदीया कमनीयमर्थम् ।
 सा शेवलानीव विलङ्घ्य सर्वान्भृङ्गीव लग्ना मुखपङ्कजेऽस्य ॥१३६॥
 अनन्यसामान्यममुष्य रूपं किमुच्यते दूष्टमिदं त्वयापि ।
 वदामि सौभाग्यगुणं किमस्य यत्र स्थिते श्रीश्च सरस्वतीच ॥१३७॥
 सङ्गादजस्रं मदवारणानां सावज्ञमालोकितदिग्द्विपेन्द्राः ।
 अमुष्य वाहाः सततं जिगीषोः क्षणेन गर्भे ककुभां भ्रमन्ति ॥१३८॥
 एकत्र भारेण धरा नमन्ती न मस्तके तिष्ठति भोगिभर्तुः ।
 इतीव सर्वास्वपि दिक्षु कीर्णमनेन सेनागजचक्रवालम् ॥१३९॥
 भुजंगमाधीशशिरोधृतस्य दाढ्यं धरित्रीफलकस्य कर्तुम् ।
 क्षिप्ता जयस्तम्भमिषादनेन समन्ततः कीलकमालिकेव ॥१४०॥
 राज्ञां शिखारत्नपरंपराभिः प्रोताभिरस्योभयतः कृपाणः ।
 शेषारिकंठास्थिविघट्टनेषु जातः क्षणं सम्प्रति कुण्ठधारः ॥१४१॥
 सीमेश्वरश्चोलमहीपतिश्च जयोत्सवद्वारि बलाद्विशन्तौ ।
 द्वावप्येनाद्भुतसाहसेन द्वाभ्यां भुजाभ्यां बलिना निरस्तौ ॥१४२॥
 अस्याद्भुतत्यागनिधेः पुरस्तात्कल्पदुमाद्याः परमाणुकल्पाः ।
 समत्वमेतेन कर्ष्य लभन्ते जगत्सूचीगौरवभाजमेव ॥१४३॥

मुञ्जस्य गुञ्जासमतापि नास्तिका योग्यता भोजमहीमुञ्जश्च
 लब्धे कवीन्द्रैः कविवान्धवेस्मिन्दासीकृता पादतलेषु लक्ष्मीः ॥१४४॥
 विहाय वक्त्राणि मृगेक्षणानां सविभ्रमभ्रूयुगताण्डवानि ।
 अस्यान्यतः साहसलाञ्छनस्य न भीतिमुद्रानुकुलं मनोभूत ॥१४५॥
 निवेश्यतां किंनरकण्ठ कण्ठे मालास्य दोर्बन्धविकासदूती ।
 कीर्तिर्विधेरस्तु समानयोगात्कामस्य कामं फलतु प्रयासः ॥१४६॥
 लज्जानिरासे निभमात्रकेण वाक्येन तेन प्रतिहाररक्षयाः ।
 पतिवरा संवरणस्रजं तां श्रीविक्रमाङ्कस्य चकार कण्ठे ॥१४७॥
 तया स्रजा कण्ठनिवेशभाजा मत्तालिमालाकलकांकृतेन ।
 अवाद्यतेवाखिलभूमिपालसौभाग्यलीलाजयडिण्डिमोस्य ॥१४८॥
 तद्बाहुलेखे कुसुमसूजोपि सौभाग्यशोभान्वयमन्वभूताम् ।
 कण्ठस्थितायामपि येन तस्यां देवस्तदालिङ्गनसत्त्वरोभूत ॥१४९॥

जयति कुसुमकेतोश्चापविद्यारहस्यं
 विधिरुचितविधायी सांप्रतं वन्दनीयः ।
 उदचरदिति वाणी तत्र पौरांगनाना-
 मिह हि सद्रूपयोगः कस्य न प्रीतिहेतुः ॥१५०॥

अथ सृदुलसृदंगध्वानमारुह्य वध्वा
 सह परिणययं यं मण्डपं पारङ्मुकीर्तिः ।
 निखिलनृपतिलक्ष्म्या रागसंक्रान्तयेव

॥ द्युतिमङ्गिकमुदारां कुन्तलेन्दुर्बभार ॥ १५१ ॥

इति श्रीविक्रमाङ्कदेवचरिते महाकाव्ये त्रिभुवनमल्लदेवविद्यापति-
 काश्मीरकभट्टविल्हणविरचिते नवमः सर्गः ॥ ६ ॥

यातेथ देवस्य तथा विवाहमहोत्सवे साहसलाञ्छनस्य ।
 कृतार्थया पार्थिवकन्ययेव कीर्त्याप्यमुच्यन्त नृपाः समस्ताः॥१॥
 आशाप्रदीपेषु गतेषु शान्तिमशेषसौभाग्यगुणक्षयेण ।
 तदीयधूमैरिव धूसरांगाः क्षोणीभुजः श्यामलिमानमापुः ॥२॥
 कमक्रमं कर्तुमभूदपेक्षा वैलक्ष्यभाजां न महीपतीनाम् ।
 श्रीविक्रमांकस्य न कङ्कपत्रास्ते किन्तु सद्द्याः समरांगणेषु ॥३॥
 यथागतैनैव पथा गतेषु भूपेष्वथ स्लानमनोरथेषु ।
 रेमे तथा भूमिपतिः श्रियेव दैत्यप्रमाथार्जितया मुरारिः ॥४॥
 सा संनतांगी शनकैः प्रियस्य तथा गुणैर्मनसमारुरोह ।
 तदेकवश्यं स्मरशासनेन यथा तदन्याभिरहार्यमासीत् ॥५॥
 श्रीकुन्तलक्षोणिपतेस्तदीये वक्त्रेन्दुबिम्बे हृदयं प्रविष्टे ।
 अन्यांगनानां मुखपंकजानि संकोचभीत्येव बहिर्बभूवुः ॥६॥
 सा तत्र शीघ्रं विवंधोपचारप्रौढे नवोढाव्रतमुत्ससर्ज ।
 अकौशलं पत्युरिदं चिरेण विश्वासमायाति नवा वधूर्यतः॥७॥
 शस्त्राधिकारी मकरध्वजस्य कण्ठेषु सौभाग्यगुरुः पिकानाम्
 वैशद्यसंजीवनमिन्दुभासां साम्राज्यमन्त्री रसपार्थिवस्य ॥८॥
 उच्चित्रणे चित्रकरस्तरूणां मानदुर्मोन्मूलनमत्तदन्ती ।
 तस्य प्रभावादथ तत्र भर्तुश्चैत्रः पुननूतनतां प्रपेदे ॥ ९ ॥
 जगज्जयार्थं स्मरपार्थिवेन नीतश्चमूनायकतां वसन्तः ॥
 वातोच्छलच्चम्पकचक्रभंग्या त्यागीव हेमप्रकरैर्ववर्ष ॥ १० ॥
 किंजल्कपुञ्जैः परिपिञ्जरासु दिक्षु प्रसूनप्रसरप्रसूनैः ।
 दिवापि जाम्बूनदभूषणानां लीलाभिसारः सदृशां बभूव ॥११॥
 मग्नं मधुस्रोतसि कर्दमाभे पदं समुद्धर्तुमपारयन्ती ।
 अजस्रमाक्रन्दनिभैर्विरावैर्मधुव्रती षट्पदमाजुहाव ॥ १२ ॥
 निरुध्य रन्ध्रं मधुपूरितस्य पुष्पस्य लोभाद्भ्रमरोवतस्थे ।
 अन्येन सागणं पपुस्तदन्यं लब्धाजनानामयमेव सागः॥१३॥

श्रीरुद्रसंसिभुजंगराजविषोष्मणा क्लान्तमिव पृथग् ।
 दरीमुखैर्निःश्वसितुं प्रभूतैः कासारप्लवत्तो मलयाचलेन्द्रः ॥१४॥
 सर्वं दिनं भूमिगृहेष्वतिष्ठद्वाधिर्ययोगं मुहुराचकाञ्च ।
 पिकांगनादञ्चमपीड्यमानश्चकार किंकिं न विद्योगिवर्गः ॥१५॥
 अहो मतिभ्रंशमनंगबन्धुश्चकार चैत्रः प्रियरुग्निडतानान् ।
 चक्रुर्यदाक्रन्दपरंपराभिः संवर्धनं कीकिलकूजितानाम् ॥१६॥
 कामस्य कश्चिच्चतुरः शरांश्चेद्विलङ्घ्याभास कथंचिदन्यान् ।
 उन्मज्जता कीकिलकण्ठयन्त्रात्स पञ्चमास्त्रेण वशीबभूव ॥१७॥
 अथ अमं स्निग्धविलोकनेन चैत्रस्य कुर्वन्सफलं नरेन्द्रः ।
 विवेश देव्याः परिगृह्य पाणिं चित्रासु लीलोपवनस्थलीषु ॥१८॥
 इतस्ततः सस्पृहमीक्षमाणो मृगेक्षणां तामथ कुन्तलेन्दुः ।
 जगाद कन्दर्पधनुर्निनादपतिस्वनभ्रान्तकृता स्वरेण ॥ १९ ॥
 सुगात्रि कश्चित्तव नेत्रमैत्रीं चैत्रः प्रसूते रतिजन्मभूमिः ।
 यस्य श्रिया त्वह्पुषश्च लक्ष्म्या माद्यन् किञ्चिद्गुण्यत्यनंगः ॥२०॥
 अधिष्ठिता मन्मथपार्थिवेन द्रष्टुं मुदा चैत्रचमूसमूहम् ।
 आलोकनेन कियतां कृतार्था बाले विलासोपवनस्थलीयम् ॥२१॥
 कन्दर्पलीलाजयराजधानि मधुव्रतानां मधुरैर्विराटैः ।
 आभाषते संमुखमागतायाः पूर्वाभिभाषीव तत्रैव चैत्रः ॥२२॥
 लास्यं त्वयि प्रेक्षितुमागतायां लतापुरंध्रयः कुसुमैः पतद्भिः ।
 मृगाक्षि लीलावनरंगघीठे पुष्पाञ्जलिहोपमिवोद्बहन्ति ॥२३॥
 अशोकशाखी निखिलदुमेषु धन्यस्त्वया पादतलाहतीयम् ।
 तेषां प्रसन्नो हि विलासबाणः कीडन्ति दासै रिवयैर्मृगाक्ष्यः ॥२४॥
 अरोचकी पादपजातिमध्ये जाने नितान्तम् बहुलदुमोयम् ।
 चैत्रेपि यः पुष्पविकासहेतोर्गण्डूषमाकाङ्क्षति ते मृगाक्षि ॥२५॥
 एकत्र तस्मिन्प्रदने सकोपं देवेन दग्धे पुरसूदनेन ।
 इयं मधुश्रीरश्मिवोद्विक्तासगमुमुग्धा सहस्रं जहनामिदधत्ते ॥२६॥

तवाङ्गवललीकुसुमैर्विलासैरवैमि कामो द्विषमाणनेत्रः ।
 चैत्रार्पितं नूतनमखजातं संधातुकामोपि न संदधाति ॥२९॥
 गुणं दधाने मधुनाप्यमाणं मनस्विनां मानसभेददत्ते ।
 शिलीमुखश्रेणिरुपैति सङ्गं पुष्पे च कन्दर्पशरासने च ॥ २८ ॥
 पुंस्कोकिलस्ते मधुमासलक्ष्या गान्धर्वसर्वस्वविशारदायाः ।
 प्रकाशितुं शिष्य इवैव पश्य रागं मुहुः पञ्चममातनोति ॥ २९ ॥
 मधुश्रिया चन्द्रमुखि त्वया च सनाथतामेति विलासचापः ।
 अभूदनङ्गस्तु समक्षमस्याः पूर्णाङ्गमेनं भवती करोति ॥ ३० ॥
 कृत्वेति सूक्तैः सरसैः प्रियायाः कर्णावतंसं पुनरुक्तकल्पम् ।
 आरोपयामास विलासदोलां लोलेक्षणां कुन्तलचक्रवर्ती ॥३१॥
 दोलाविलोलालकमुद्विलासभ्रूवल्लिविश्रान्तविलोचनाब्जम् ।
 उत्कीर्य कामः शरटङ्किकाभिस्तद्वत्कृमेतस्य हृदि न्यधत् ॥ ३२ ॥
 गीतं स्फुरत्पञ्चममञ्चितश्रु विलोकितं नूपुरनिस्वनञ्च ।
 नृपाङ्गनायास्त्रयमेतदासीत् त्रैलोक्यराज्ये मदनस्य शस्त्रम् ॥३३॥
 नितम्बबिम्बातिभरेण दोला यथायथा तारतरं चुकूच ।
 अलक्षितज्यानिनदः क्षितीन्दुं तथातथा पुष्पधनुर्बिभेद ॥ ३४ ॥
 आन्दोलयामास विलासदोलां स वल्लभायाः पृथिवीभुजंगः ।
 भङ्गं समग्रस्य वधूजनस्य जग्राह सौभाग्यगुणप्रपञ्चः ॥ ३५ ॥
 समुद्वहन्त्योस्तदथायताक्षीदोलाविलोलाननमार्गसख्यम् ।
 दृशोः क्षितीन्द्रस्य गतागताभ्यां गठ्यूतिमात्रं भ्रमणं बभूव ॥३६॥
 अथावतीर्य क्षणमात्रमङ्गे प्रियस्य विश्रम्य गतश्रमा सा ।
 वसन्तलक्ष्म्या परिलोभ्यमाना चचाल पुष्पावचयाय देवी ॥३७॥
 भ्रूसंज्ञया कुन्तलभूमिभर्तुरन्तःपुरं सर्वमपि क्रमेण ।
 चक्राम पुष्पोच्चयबद्धहर्षमुत्साहसीमा हि पतिप्रसादः ॥ ३८ ॥
 असंख्यपुष्पोपि मनोभवस्य पञ्चैव बाणार्थमयं ददाति ।
 एवं कदयत्वमिवावधाय सर्वस्वमग्राहि मधोवधूमिः ॥ ३९ ॥

आरोहति क्षोणिपतेः कलत्रे शिरस्यपुष्पोच्चयकौतुकेन ।
 प्रभ्रंशमाशङ्क्य नितम्बभारार्द्धिवेव लीलावकुलश्चकम्पे ॥ ४० ॥
 आनम्यमाना लतिकाः रजोभिः पौष्पैर्दृशौ पूरयति स्म देव्याः ।
 अन्या नृपालिङ्गनमाससाद भाग्येषु नास्ति प्रतिषेधमार्गः ॥ ४१ ॥
 अताडयत्पल्लवपाणिनैकां पुष्पोच्चये राजबधून्मशोकः ।
 तच्छेदहेतोरलिपङ्क्तिभङ्ग्या व्याकृष्यतेवासिलतास्मरेण ॥ ४२ ॥
 आरोप्यमाणा दयितेन काचिन्नितम्बभारान्स्वयमप्रगल्भा ।
 स्कन्धात्तरोः प्रत्युत मूलमाप खिन्नेन पादाम्बुरुहद्वयेन ॥ ४३ ॥
 आरुह्य कान्तासु विधुन्वतीषु संभाव्य भङ्गं जघनातिभारैः ।
 लघुत्वहेतोरीव पुष्पभारं दुर्मास्त्यजन्ति स्म निजोत्तमाङ्गात् ॥ ४४ ॥
 केलिदुमाः दमातलमागतासु संगृह्य पुष्पाणि नितम्बिनीषु ।
 भारान्न भङ्गः समजायतेति गर्वादिवोच्चैः शिरसो बभूवुः ॥ ४५ ॥
 स्वेदाम्भसा पुष्पपरजोभरैश्च सर्वत्र पङ्के विहिते बधूनाम् ।
 चक्रे निवासं कठिनोन्नतेषु तासां मनोभूः स्तनमण्डलेषु ॥ ४६ ॥
 नाभीरुदेषु स्थलतां गतेषु लताच्युतैः पुष्पपरागपुञ्जैः ।
 मध्यप्रदेशः सुदृशां स्मरस्य लीलागतिप्राङ्गणतां जगाम ॥ ४७ ॥
 प्रवर्तमानासु नृपाङ्गनासु तत्र गृहीतुं कुसुमानि तासु ।
 कृतो महान्तन्मधुजीविनीभिः कोलाहलः षट् वरणावलीभिः ॥ ४८ ॥
 विधाय काचिन्नयने सपत्न्याः क्रीडाच्छलात्पुष्पपरागपूर्णे ।
 पान्नत्वमाप प्रियचुम्बनस्य किमस्ति वैदग्ध्यवतामसाध्यम् ॥ ४९ ॥
 मानप्रिया कापि नृपस्य पत्नी स्पृष्टा न पुष्पोच्चयवाञ्छयापि ।
 अनेकनारीजनबाहुमूलनखक्षतावेक्षणतत्पराभूत् ॥ ५० ॥
 कस्याश्चिदूर्ध्वं नयनाय शाखामाक्रम्य यामर्पयतिस्म देवः ।
 सा तन्नितम्बस्य भरेण भग्ना समं मनोभिः प्रतिकामिनीनाम् ॥ ५१ ॥
 नृपेण काचिद्विहितावतंसा वृणाय नामन्यत काञ्चिदन्याम् ।
 स्त्रीणां हि सौभाग्यमदप्रसूतिः प्रियप्रसादो मदिरासहसम् ॥ ५२ ॥

पौष्पे रजस्युच्चलिते समन्तात्समस्तनेत्रप्रतिबन्धहेतौ ।
 आश्चर्यमङ्गेषु नृपाङ्गनानाममोघबाणः कुसुमायुधोभूत् ॥ ५३ ॥
 कृष्ठांशुका कापि नरेन्द्रवामा लतानिकुञ्जात्कपिना सकोपम् ।
 धूर्तापलाध्य प्रियमालिलिङ्ग कोपंनचापप्रतिसुन्दरीभ्यः ॥ ५४ ॥
 ओष्णीभरस्यातितरां गरिम्णा भङ्क्ता लतां कापि कुरङ्गकाक्षी ।
 नरेश्वरस्योपरि निष्पपातपीडामवापुः प्रतियोषितस्तु ॥ ५५ ॥
 बबन्ध धम्मिल्लमधीरदृष्टेः क्षमानायकश्चम्पकमालिकाभिः ।
 क्षितेषु मन्थुः क्षिरतामवाप विपक्षसारङ्गविलोचनानाम् ॥ ५६ ॥
 विरेजिरे कुन्तलराजदाराः प्रसूनरेणूत्करवर्णिकाभिः ।
 निजेषु दोर्विद्रमनाटकेषु कामेन नीता इव नर्तकीत्वम् ॥ ५७ ॥
 प्रसूनभाराभरणा विरेजुश्चालुक्यभर्तुर्लटभाङ्गनास्ताः ।
 प्राचुर्यतः पुष्पशिलीमुखानां कृतास्त्रवर्षा इव मन्मथेन ॥ ५८ ॥
 पृष्ठालुलगाः क्षितिपाङ्गनानां न्यवेदयन्षट्चरणाः क्रणन्तः ।
 पुष्पापहारोत्थमिवापराधं शृङ्गारिणीगोत्रगुरोः स्मरस्य ॥ ५९ ॥
 विलासिनीनां कुसुमोत्थरेणुकरम्बितस्वेदजलप्लुतानाम् ।
 स्मरोष्मणा हेममयं शरीरं किञ्चिद्द्रवीभूतमिवावभासे ॥ ६० ॥
 काचित्क्षिपन्ती मधुपं विशन्तमितस्ततः पाणिसरोरुहेण ।
 बाल्ये कृतं कन्दुकताडनेषु अमं सृणाक्षी बहु मन्यते स्म ॥ ६१ ॥
 क्षिप्तो मुखोत्पट्चरणस्तरुण्या विवेश हस्ताम्बुजकोशमस्याः ।
 तस्माद्विधूतो मुखसाजगाम लज्जा कुतः स्वार्थपरायणानाम् ॥ ६२ ॥
 आहूयमाना इव हंसनादैर्विकृष्यमाणा इव कौतुकेन ।
 जम्बुस्ततः कलान्तिनिवारणाय लीलासरस्तीरमरालनेत्राः ॥ ६३ ॥
 जानासि भारं कुचनिर्मितं चेत्किं लाघवं मध्यकृतं न वेत्सि ।
 इतीव तासां चरणाम्बुजानि सञ्जीरनादैरवदन्धरित्रीम् ॥ ६४ ॥
 न राजकान्ताभिरदृश्यतोर्वी स्तनद्वयेनाधिकमुन्नतेन ।
 हंसास्तुलीकोटिभिर्निरदृष्टैः पुण्यैः पदन्यासयङ्गनाकारिताः ॥ ६५ ॥

प्रारेभिरे वीजनमंशुकान्तैर्वनस्थले तज्जघनस्थलानि ।
 पादेषु पीडाकरमङ्गनानां पथः श्लथीकर्तुमिवाकंतापम् ॥६६॥
 शश्वद्विलासव्यजनानुकारिकर्णावतंसार्पितपल्लवानाम् ।
 न स्वेदवारि क्षितिपाङ्गनानां गरुडस्थलीषु स्थितिमाससाद ॥६७॥
 मुखाग्रचुम्बीनि नितम्बिनीनां तासां विरेजुः कुचमण्डलानि ।
 अमाम्बुशान्त्यै हिमशीतलानां श्वासानिलानामिव सेवनाय ६८
 हंसाः खमुड्गीय गताश्चुलुक्यभूपालकान्तागतिचौर्यभाजः ।
 तदादिपुंसः अयितुं भयेन विमानहंसानिव पद्मयोनेः ॥६९॥
 क्रीडासरसतामरसावतंसमुद्वेलहेलाञ्जितपादचारः ।
 विवेश ताभिः सह भूमिपालः करेणुभिः सार्धमिव द्विपेन्द्रः ॥७०॥
 दत्तं सरोभ्यः फलमम्बुजानां सङ्गेन कान्तामुखतस्कराणाम् ।
 एषामकृष्यन्त नृपाङ्गनाभिर्विलोचनानीव यदुत्पलानि ॥७१॥
 विपर्ययस्तत्र बभूव कान्ताबिम्बौष्ठरागाञ्जनयुञ्जसङ्गात् ।
 रक्ताम्बुजत्वं दधुरुत्पलानि पद्मानि नीलोत्पलतामवापुः ॥७२॥
 विलासयुद्धेन नितम्बिनीनां सर्वाण्यभज्यन्त सरोरुहाणि ।
 प्रागेव पृथ्वीतिलके निषण्णा लक्ष्मीश्चिराद् बुद्धिमती बभूव ॥७३॥
 विधाय भूपालपुरन्ध्रपादप्रक्षालनं वीचिकरैः सरस्था ।
 समुच्छलच्छीकरविश्रमेण तदङ्घ्रिपानीयमबन्द्यतेव ॥७४॥
 किमप्यवज्ञातसरोरुहेभ्यः सरस्तदासां पदपल्लवेभ्यः ।
 परीक्षणायेव निसर्गकान्तेरलक्तकं वीचिभिराचक्षर्षे ॥७५॥
 सरःप्रवेशे नृपसुन्दरीणां पादेषु संरब्धशिलीमुखेषु ।
 प्रागेव भिन्नः अमवारिलेशैरलक्तकः पादतलं मुमोच ॥७६॥
 पद्मप्रभाहारिहिमैकधास्तुषारशैलादिदमाजगाम ।
 चित्तेप साक्षेपमितीव तासां पद्माकरः कुङ्कुममङ्गकेभ्यः ॥७७॥
 मग्ना गभीरे पयसि प्रमादात्प्रविश्यदेवेन विकृष्यमाणा ।
 ससंभ्रमाभिः प्रतिक्रमिचोभिर्विलोकिताः कतचित्दूषिता च ॥७८॥

आकृष्य लक्ष्मीं ध्रुवमुद्रसत्त्वं पद्मान्यनीयन्त मुखैस्तदीयैः ।
 भूलीभृतानां वसतित्वमापुर्यदध्वगानामिव षट्पदानाम् ॥१९॥
 स्फुरत्प्रभाणां नृपवल्लभानां तासां पुरस्तात्सरसीरुहेषु ।
 भृङ्गप्रपामण्डपसंनिभेषु रेजे प्रपापालिकयेव लक्ष्म्या ॥२०॥
 सरःप्रविष्टेषु नितम्बिनीनां नितम्बविम्बेषु शिलाघनेषु ।
 तदीयलावण्यरसप्राहसङ्गादिवोत्तुङ्गतरङ्गमासीत् ॥२१॥
 चालुक्यविद्याधरसुन्दरीणां दृष्टासु वक्त्रेन्दुपरम्परासु ।
 निद्रादरिद्रेष्वपि पङ्कजेषु सङ्कोचभीत्या विविशुर्न भृङ्गाः ॥२२॥
 लक्ष्म्याः क्षमापालपुरन्धिप्रवर्गनिसर्गसौन्दर्यतिरस्कृतायाः ।
 श्वासैरिव प्रेङ्खितमुल्ललास परागचक्रं कमलोदरेभ्यः ॥२३॥
 स्तनद्वये निर्जितकुम्भिकुम्भे नृपावकीर्णां करयन्त्रधारा ।
 चारुश्रुवः पञ्चशरप्रमुक्तनिशातनाराचतुलामधत्त ॥२४॥
 पानीयधारा नरनाथमुक्ता वामश्रुवो वक्रितकंधरायाः ।
 चूर्णं गताः कुण्डलरत्नकोटौ तत्रैव मुक्ताफलकान्तिमापुः ॥२५॥
 नरेन्द्रलीला करयन्त्रवारि लुलोठ देव्याः कुचकुम्भपीठे ।
 आश्चर्यमस्याः प्रतिवल्लभानामुत्पल्लवा मन्युलता बभूव ॥२६॥
 इत्युत्सवं भूतिलकोनुभूय लीलावगाहग्रहमुत्ससर्ज ।
 निसर्गरम्येपि विचेष्टिते यदतिप्रसङ्गो रसभङ्गहेतुः ॥२७॥
 अनञ्जनश्यामललोचनानामकुङ्कुमालेपनपिञ्जराणाम् ।
 स्नानावसाने नलिनोदरीणा मकृत्रिमं मण्डनमाविरासीत् ॥२८॥
 सरः सनाथानि दधत्पयांसि पयोधरालेपनचन्दनेन ।
 तत्तत्क्षणाद्वालसृगेक्षणानां दधे वियोगादिव पारिडमानम् ॥२९॥
 अथांशुकानां परिवर्तनेन तासां वपुर्मण्डनकर्मणा च ।
 निश्चित्य पञ्चेश्वरकुण्डभावं देवे पुनः कामं कमाचकर्ष ॥३०॥

शोभन्तेसम विलासकुन्तललताः पुष्पैरिवास्मःकणै-
 र्जाता मज्जनशीतला कुचतटी कन्दर्पधारागृहम् ।
 आसीत्किंच नराधिपप्रणयिनी वर्गस्य नैसर्गिक-
 च्छायाखण्डनमण्डनव्यपगमाद्गात्रेषु चित्रा लिपिः ॥८९॥

इति श्रीविक्रमाङ्कदेवचरिते महाकाव्ये त्रिभुवनमल्लदेवविद्यापति-
 काश्मीरकभट्टविल्हणविरचिते दशमः सर्गः ॥ १० ॥

स्नानशेषेषु सृणारुणमासां स्पर्शनादिव नरेन्द्रवधूनाम् ।
 प्राप रश्मिपटली दिनभर्तुः पाटलत्वमथ संघटमाना ॥१॥
 कण्टकैरिव विदारितपादः पद्मिनीपरिचितैरपराद्धैः ।
 आरुरोह सरसीरुहबन्धुः स्कन्धमम्बुधितटागमनाय ॥२॥
 मज्जतः पयसि पश्चिमसिन्धोः स्निग्धमम्बरतलं परिरम्य ।
 भास्वतस्तुषवियुक्तमसूरक्षोदपाटलमलक्षयत धाम ॥३॥
 प्रार्थनार्थमिव रत्नरुचीनां भानुरब्धिमगमद्गतकान्तिः ।
 सत्वमुन्नतपदात्पतितानां विद्यते न महतामपि नूनम् ॥४॥
 चञ्चुसंपुटगृहीतमृणालीगून्धिसूत्रनिवहेन रथाङ्गः ।
 विप्रयोगभयतो दयितायाः कण्ठपाशमिव कर्तुमिवेष ॥५॥
 कून्दतिस्म न विवेद मृणालीं चञ्चुसंपुटगतां लुठति स्म ।
 वल्लभाविरहहालहलेन व्याकुलः किमकरोत् रथाङ्गः ॥६॥
 दीर्घपादपशिखास्तु गिरीणां मस्तकेषु शिखरेषु गृहाणाम् ।
 दग्धकालवशतः शतखण्डं धाम चण्डकिरणस्य बभूव ॥७॥
 वासवस्तुरगरत्नममुष्मात्प्राप दास्यति ममापि कदाचित् ।
 आशयेति जलराशिमयासीद्भानुरश्वपरिवर्तधियेव ॥८॥
 भानुमानपरदिग्वनितायाश्चुबतिस्म मुखमुद्गतरागः ।
 पद्मिनी किमु करोतु वराकी मीलिताम्बुरुहनेत्रपुटाभूत् ॥९॥
 वाजिनां गगनलङ्घनखेदच्छेदनाय मदिरामिव दातुम् ।
 कामुकः कमलिनीवनितानां वारुणीप्रभवमब्धिमयासीत् ॥१०॥
 सेवते स्म जलधौ प्रतिबिम्बं बिम्बपाटलमशीतमरीचेः ।
 शेषकेलिशयनस्थितलक्ष्मीवल्लभाभरणकौस्तुभलीलाम् ॥११॥
 वाजिनामविशतां जलराशौ वारिवारणभयाद्दिनभर्ता ।
 दातुमीक्ष्यपुटेष्विव मुद्रां द्राङ्जिजातपपटं विचकर्ष ॥१२॥
 भास्वति त्रिभुवनाङ्गणदीपे वेधसा प्रशमिते मरुतेव ।
 धूमराजिस्व तत्प्रशमोत्थाध्वान्तसन्ततिरुल्लस्यत लीला ॥१३॥

रत्नराजिनिकरप्रकरेण प्राप्यमाण इव दीपकशङ्काम् ।
 अम्बरादय पपात पतङ्गस्तैलपात्रसदृशे जलराशौ ॥१४॥
 भानुवाहनसुरप्रहतानां वारिराशितटशुक्तिपुटानाम् ।
 मौक्तिकैरिव कियद्भिरपि द्यौस्तारकैस्तिलकिता विरराज ॥१५॥
 पद्मकोटरकुटीरकबन्धत्रासविद्रुतमधुव्रतनीलम् ।
 ध्वान्तमङ्कुशविहीनममाङ्गोद्ध्योमसीमनिगतिनयनानाम् ॥१६॥
 नीलरत्नघटितेव समन्तात्पीडितेव निविडाञ्जनपुञ्जैः ।
 प्रावितेव जलराशितरङ्गैर्ध्वान्तराजिभिरभूदुवनश्रीः ॥१७॥
 चूर्णकुन्तलसटापरिपाट्या विप्रकीर्णमिव भालतलेषु ।
 केशवन्धविभवैलटभानां पिण्डतामिव जगाम तमिस्रम् ॥१८॥
 सर्वनिहवविधौ कृतबुद्धेलौचनानि विफलानि विधाय ।
 स्पर्शनेन्द्रियममुद्रितशक्तिप्रातिकूल्यप्रकरोत्तिमिरस्य ॥१९॥
 कस्य न प्रतिहत वत चक्षुर्ध्वान्तसन्ततिभिरुडुमराभिः ।
 केवलं मनसिजप्रहितानां नावधूतमभिसारवधूनाम् ॥२०॥
 पांसुतल्पसुरतप्रवणानां विश्वलोचनपुटप्रतिबन्धे ।
 कुत्र कुत्र न तिरस्करिणीत्वं ध्वान्तमण्डलमगाच्चपलानाम् ॥२१॥
 पश्चिमाचलविटङ्गनिपाते विद्रुता इव रुचस्तपनस्य
 दीपदीपकिरणाः सृणिभङ्गीमारभन्त तिमिरद्विरदस्य ॥२२॥
 सूत्रिताभिसरणाः प्रणयिन्यः कान्तसंगममबिघ्नमवापुः ।
 फूत्कृतैः पथि निवारितदीपाश्चापलं जयति पञ्चशरस्य ॥२३॥
 सासभेन सहिता रजकस्त्रीरूपधारि विरचय्य शरीरम् ।
 कापि वञ्चितवती जनबाधां कं बिडम्बयति नो कुसुमेषु ॥२४॥
 कापि मुख्यपदवीमधिरोप्य स्वां सखीं श्वकरधारितदीपा ।
 प्राणनाथरतिगेहमयासीदद्भुतो रतिपतेरुपदेशः ॥२५॥
 दिग्वधूरथ पुरंदरसेव्या पाकपाण्डुशरकाण्डबिडम्बि ।
 त्रिधत्ती सुसमकोत्तवर्षे रोहिणीप्राणमित्रः परिणामम् ॥२६॥

प्रौढकेतकपरागेविपाण्डुज्योतिरत्र समये भ्रमति स्म ।
 नाकनायकनिकेतचकोरीपीतशेषमटवीमुदयाद्रेः ॥२९॥
 पूर्वादिक्मुखमशोमत किञ्चिन्निर्गतेन शिखरादुदयाद्रेः ।
 चारुचन्दनविलेपनपाण्डुभू पताकमिव शीतकरेण ॥२८॥
 पाटलेन तमसां पटलेन प्राच्यशैलभुवि बालमृगाङ्कः ।
 धातुशृङ्गपृथुलस्थलधूलीकेलिधूसरशरीर इवासीत् ॥२९॥
 पाटलांशुरगमत्सवितेति श्वेतभानुरपि तादृगुपागात् ।
 वज्रनार्थमिव पङ्कतहिमयास्तां पुनश्चलयितुं न शशाक ॥३०॥
 तर्जितं तिमिरमिन्दुमयूखैः शैलदुर्गगहनानि विवेश ।
 मानिनीजनमनांसि बभूवुश्चित्र मञ्जनमषीमलिनानि ॥३१॥
 तत्क्षणाद्विषमशैलनिकुञ्जप्रान्तपुञ्जितमरचयत् सर्वम् ।
 ध्वान्तचक्रमभितः प्रसरद्विर्दुर्गशेषमिव चन्द्रमयूखैः ॥३२॥
 नीलताल फलपङ्किसनाथा प्राच्यशैलवनभूमिरराजत् ।
 निम्नया शशिकरैरुपगूढा ध्वान्तमातक परम्परयेव ॥३३॥
 पारणोद्यतचकोरपुरन्ध्रलिप्तलोचनरुचामिव पुञ्जैः ।
 पाटलं पटलमिन्दुरुचीनां रक्तकम्बलविडम्बि बभूव ॥३४॥
 क्षाल्यमानः इव मानवतीनां दूग्भिरश्रु जलनिर्झरिणीभिः ।
 त्यक्तवानुदयरगमशेषं पूर्वादिक्तिलकबिन्दुरिवेन्दुः ॥३५॥
 बल्लभेन जगतां निजधाम्ना जातगर्व इव रात्रिभुजङ्गः ।
 पादविन्यसननर्मविधायी निर्ममे कुमुदिनीं गतनिद्राम् ॥३६॥
 रूप्यदर्पणतलप्रतिनल्ले लाञ्छनं तुहिनदीधितिबिम्बे ।
 शोभते स्म गगनप्रतिबिम्बच्छायमद्विशिखरस्थितिभाजि ॥३७॥
 द्रावितरुफटिकशैलविटङ्करुफारनिर्झरपरंपरयेव ।
 पूरिता शशिरुचाः भुवनश्रीमानपङ्कमनुदत्पद्मानाम् ॥३८॥
 मांसलत्वमतिमात्रमवाप्ते पिण्डदुग्धसदृशे निजधाम्नि ।
 आचकर्ष हिमदीधितिरुच्चैर्मिश्रणार्थमिव वार्धिजलानि ॥३९॥

दत्तदिक्तटविपाठनशङ्कः शीतरश्मिकिरणामृतपूरः ।
 मन्यशैलविशरारुशरीरक्षीरनीरधिविलासमवाप ॥४०॥
 केतकद्रुतिनिभं भुवनान्तस्तन्महः प्रकृतिशीतलमिन्दोः ।
 कस्य नो वपुषि चन्दनलेपः कान्तितश्च गुणतश्चबभूव ॥४१॥
 क्षिप्यतां क्वचन चन्दनपाण्डुश्चन्द्रिकारसभरः कलशीभिः ।
 कचुरित्थमबलाः प्रियङ्गीनाः पादयोरपि निपत्य सखीनाम् ॥४२॥
 कापि शीघ्रमवधीरितमाना मानिनी प्रचलिता प्रियधाम्नि ।
 आगतेन मरुतापि पुरस्ताद्धाद्यवस्य परिहारममंस्त ॥४३॥
 हृत्यमाप्तवति मन्मथबन्धौ तारकापरिवृढे जरठत्वम् ।
 आदिदेश नृपतिः कृतभूषाः पानकेलिनियये हरिणाक्षीः ॥४४॥
 अद्भुतास्त्रसुरली कुसुमेषोर्विश्रमद्विरदबन्धनभूमिः ।
 कुन्तलक्षितिपतिप्रमदानां पानकेलिरभसोऽथ जजृम्भे ॥४५॥
 आलवालवलयस्थितिभाजां बान्धवः सरसरागलतानाम् ।
 हेमपात्रनिबद्धप्रणयिन्यः पाटलाः शुशुभिरे मधुचाराः ॥४६॥
 रत्नकेलिचषकेषु निविष्टं सीधुनव्यमसमायुधबन्धुः ।
 राजदारपरिवुम्बनकेलिनासजातमिव कम्पमुदाह ॥४७॥
 विश्वसंवननचूर्णसमानैः कामिनीकुलगुरोर्मदस्य ।
 सख्यमाप चनसारपरागैः सीधु कुन्तलपतिप्रमदानाम् ॥४८॥
 यामिनीप्रियतमप्रतिबिम्बं पूरितेषु मधुना विशदेत् ।
 लक्षतेस्म चषकेषु निविष्टं स्फाटिकोपलपिधानमिवान्तः ॥४९॥
 पुष्पसौरभवशेन विलोलाः पङ्क्तयः शुशुभिरे अमराणाम् ।
 सीधुहेमकलशीषु विनिर्यदुपधूमलतिकाकमनीयाः ॥५०॥
 सप्रणाममिव पाणिगतेभ्यः संमुखं विलुठिता चषकेभ्यः ।
 आससाद मदिरा मदिराक्षीपाटलाधरदलप्रणयित्वम् ॥५१॥
 आननेषु मदिरा प्रविशन्ती दन्तकान्तिनिकरैः कृतसंगा ।
 कामकीर्तिमिव कन्दलयन्ती दृश्यते स्म नृपतिप्रमदानाम् ॥५२॥

प्रान्तप्राटलकपोलतलानि प्रखलङ्गणितिविभ्रमभाङ्गिज ।
 प्रार्थिवस्य मदनास्त्रमभूजलीलनीरजदृशां वदनानि ॥५३॥
 मन्मथः प्रविशतिस्म सुरायां सा कुरङ्गकदृशां वदनेषु ।
 तानि चेतसि नहीतिलकस्य द्वापतेस्तदपि रागपयोधौ ॥५४॥
 चन्द्र किं पतसि मे मधुभाण्डे वीक्षसे न किमु कुन्तलनाथम् ।
 एष ते विरचयिष्यति कान्तां रोहिणीमलकपल्लवहीनाम् ॥५५॥
 नास्मि रे कुमुदिनो मधुपात्रे संमुखं किमिति तिष्ठसि चन्द्र ।
 रोहिणीनयनकज्जलजातः किं त्रपां दिशति ते न कलङ्कः ॥५६॥
 त्वां निपीय मधुपात्रनिषण्णं वारुणीरसभरेण सहैव ।
 यामिनीरमण मानवतीनां संहरामि कुलकण्टकमद्य ॥५७॥
 अस्ति दोषयुगलं द्विजराज त्वं यदि स्पृशसि मे मधुपारीम् ।
 अत्र नैष सहते तव राजा रोहिणी रुषमुपैति च तत्र ॥५८॥
 यामिनीदयित कामपि कान्तां दुर्लभामभिलषन्धुवमेषि ।
 तान्नवं किमपि तन्नुसमानं मानहीन विदितः परमार्थः ॥५९॥
 क्षिप्यसे यदयमम्बरसीम्नः क्षारवारिधिजले हरिणाङ्क ।
 चापलस्य कलमेतदवश्यं कोन्यथा त्वयि हिमत्विवि खेदः ॥६०॥
 लम्पटं युवतिषु भ्रुवमिन्दो त्वां वदन्ति तरलं निजदाराः ।
 रे यदत्र चषकेपि निविष्टं तारकाः प्रतिमयानुसरन्ति ॥६१॥
 कौमुदीरमण कापि दुराशां नूनमर्पितवती भवतोत्र ।
 यद्विलङ्घ्य गगनं प्रतिरात्रि त्वं प्रयासि ककुभं वरुणस्य ॥६२॥
 निर्मलं प्रियतमं हृदये मे किं करोषि कलुषं रजनीश ।
 मुञ्च रत्नचषके मदिरां मे किं नवेत्सि निजमङ्गकलंकम् ॥६३॥
 वायुनापि गमितस्तरलत्वं यत्र दीपनमनोन्मनानि ।
 दर्शनोत्सुकतमेव विधत्से तद्वितीर्णसमयोसि कयापि ॥६४॥
 किं गतेन बहुवल्लभभावं वञ्चिता प्रियतमेन धराकी ।
 द्यौरियं प्रसूति नित्यमभीलसारीव रजनी यदशीषाम् ॥६५॥

गण्डयोररुणिमा दृशि भावः कोपि च भ्रुकुटिविभ्रमहेतुः ।
 सुभ्रुवां दयितसान्त्वनवर्जं मानकार्यकरणाय मदोभूत ॥६६॥
 इत्युदञ्चितविलासरसानामर्थकुड्सलितनेत्रयुगानाम् ।
 जल्पितानि सरसानि स शृण्वन्सुभ्रुवांकमपि संमदमाप ॥६७॥
 पानकेलिमनुभाव्य विभूतिं प्रेक्ष्य पद्मलदृशां च मदोत्थाम् ।
 तल्पसद्मानि जगाम स सार्धं कुन्तलेन्दुरथ चन्दलदेव्या ॥६८॥
 आयुषे भवति यत्कुसुमेष्वोर्येन यौवनतरुः फलदायी ।
 किं च रागलघेरमृतं यत्तत्र तन्त्रप्रतिराचरतिस्म ॥६९॥
 केलिघाम्नि न तयोः परिमातुं शक्यतेस्ममुखविभ्रमलक्ष्मीः ।
 प्रीतिराविरभवत्तु समाना कामकार्मुकतुलातुलितैव ॥७०॥
 तौ परस्परविलोकनलीलासान्द्रकौतुकरसौ परिचिन्त्य ।
 मुद्रितेक्षणपुटौ न मुहूर्तं निद्रयापि सकुतूहलयेव ॥७१॥
 ज्ञातुमद्भुतविलासनिधाने प्रेक्षि सास्यमिव जातगरिम्णि ।
 केलिधामनि तयोः शतवारं क्षिप्तवान्मनसि मानमनङ्गः ॥७२॥
 अत्रान्तरे सरसजृम्भितभिन्नषड्ज
 भाषाविशेषपरिपोषितचित्रभङ्गि ।
 पीयूषपेशलसुभाषितभाषिणीभिः
 प्रत्यूषसङ्गलमगीयत सागधीभिः ॥७३॥
 'इय ब्रजति यामिनी' त्यज नरेन्द्र निद्रारसं
 दरिद्रति वियद्द्रुमे कुसुमकान्तयस्तारकाः ।
 ग्रयं च कुसुमा-युधप्रियसुहृत्क्षणैः पञ्चवै
 भविष्यति पयोनिधेः पुलिनराजहंसः शशी ॥ ७४ ॥
 वागुन्मीलति भिन्नषड्जललिता लीलाशुकानामपि
 क्रोडे दन्तकरणदण्डुरतवोर्भङ्गा विधीश्चन्द्रिका ।
 पूर्वाशामुखमण्डनत्वमचिराच्चरणद्वन्द्वं शुरायास्यति
 द्रिगुन्मुद्रप्रदेवि पङ्कजदलच्छायाध्वलि लोचने ॥७५॥

ये बालभ्रमसंनद्धलखलिखने याताः कुरङ्गीदृशाः ।

ये वन्निहप्रतिमल्लभल्लपदवीपञ्चेषुणा लङ्घिताः ।

जाताः कान्तिविपर्ययादनवधेर्दीपाङ्कुरास्तेषुना

धूलीधूसरतान्नचूडतरुणीचूडावदापाण्डुराः ॥७६॥

यः सैन्ये स्मरपार्थिवस्य विरहीप्रत्यर्थिनामग्रणी

ज्योत्स्नानिर्भरमुज्ज्वलिस्म जगतां यस्तापनिर्वापणम् ।

सोयं तारकनायकः किमपरं शङ्कारसंजीवनं

जातः पृष्ठपरागपाण्डुरजरत्कूष्माण्डपिण्डाकृतिः ॥७७॥

खण्डः क्षपासु कियतीष्वपि यः कृशाङ्गि

भङ्गीमनङ्गपरशोः सदृशीं विभर्ति ।

सोयं निमज्जति जगन्नयनाभिरामः

श्यामावधूवदनचन्दनबिन्दुरिन्दुः ॥७८॥

सपदि परिजनस्त्रीविस्तृतोद्गाढलज्जा-

क्रमनमितमुखीभिः खिद्यते खण्डिताभिः ।

घनमस्तुविभूषाखण्डनोच्चण्डगण्ड-

स्थलविलुलितबाष्पोत्पीडसेनेक्षणाभिः ॥७९॥

ये मानद्विरदङ्कुशाः कुशलिनः कण्ठेषु ये रागिणां

सोत्प्रासेन विलासपाशपदवीं पञ्चेषुणा लम्बिताः

पादास्ते घटमानकोकमिथुनक्रीडारहःसान्निः

क्षोणीकान्तमृणालतन्तुलुलित्तास्ताम्यन्ति तारापतेः ॥८०॥

स्फुरतिनिरुपमोर्थस्तन्वते पाकमुद्रा-

परिचयमकवीनामप्यकाण्डे वचांसि ।

सुकवितिलक वेला कापि सारस्वतीयं

क्षणमवहितचित्त काठ्यचिन्तां विधेहि ॥८१॥

केलिप्राङ्गणकुट्टिषु न पुनः क्रीडन्ति पृथ्वीभृतां

यद्गण्डस्वस्त्यान्तुर्दितप्रयःपङ्केषु मग्नः प्रियः ।

सुनमीलकमशङ्खलकिलकलमैङ्खोललेलैः प्रदै-

रुतिवृत्ति परागपुष्पशयनात्त्वत्कुञ्जराग्रे सराः ॥८२॥

ये कुराठीकृतवस्त्रभ्रमगतयः शस्त्रैरतङ्गस्य ये

न आप्ताश्च निशीथिलीपतिकरैः शैथिल्यवीथीमपि ।

ते निःशङ्खघटङ्क तालुतुमुलप्रोतप्लुतमावितै-

स्त्रिज्जनाः कुक्कुटकूजितैर्मृगदृशांमानयहयन्ययः ॥८३॥

क्षिपति तिमिरभारं भैरवः कैरवाणा-

मुदपशिखरिलीलाशेखरोयं खरांशुः ।

अपि चकितचकोशीपीतशेषेण धाम्ना

भवति विधुरकारडे तरङ्गलसोदपाण्डुः ॥८४॥

सम्यङ्मन्मथशासने स्थितप्रतामुत्साहदानोद्यताः

सान्द्रं मानवतीजनस्य मनसि व्यापारयन्तो भयम् ।

कन्दर्पेण कृताकृतैश्चान्विधौ यूनां निशुक्ताश्च

आम्यन्ति स्फुटिताब्जखौरभमुपः प्रत्यूषप्रलानिलाः ॥८५॥

रेजे व्योमनि लङ्घितोभयतटा व्योमसूचवन्तीव या

या शैलेन्द्रशिलातलेष्मलभत श्रीखण्डपङ्कोपसाय ।

देवस्यानघपुरंघितेन वसवेर्लोकत्रयीकामुत-

क्रीडाकर्मयोगवूर्णासदृशी निद्राति सा चन्द्रिका ॥८६॥

निक्षिप्य गरुडफलकेष्विव लखिताना-

मात्मद्युतिं दधति पारादुरतां प्रदीपः ।

शुष्यन्ति चन्द्रमणयश्च भवस्विनीता-

मार्द्रत्वमीक्षणपुटेष्विव संतिवेश्य ॥८७॥

त्यक्ताः शक्रमतङ्गजेन कथमप्याधोरणाद्विभ्यता

संक्षोभादरुणेन वन्यकरिणां व्योमाद्गणे पुञ्जिताः ।

किंचिद्गर्जदरयमत्तमहिषव्याकीर्णमानज्वाराः

पूर्वमाश्रयमुत्सजन्ति तुषाराः कुरुदेय तिमरदुते ॥८८॥

क्षिप्त्वा गुह्यासु तिमिरं विहितव्यलीकतः

पादान्बद्धन्ति गिरयस्तरणोः शिरोभिः ।

तन्मस्तकेषु च किमप्यभयप्रदान-

हेतोरिवार्थितकरः प्रतिभाति भानुः ॥८८॥

बाणाः श्वेतमयूखशाणकषणक्षरणाः क्षणात्कुण्ठतां

यातास्त्यक्तनयासु यासु निहिताः पद्मापि पञ्चेपुणा ।

उत्तंसोत्पलपल्लवेपि पतिते दैवात्पुरः पादयोः

कण्ठाश्लेषकठोरकौतुकरसास्तिष्ठन्तिताः कामिनाम् ॥८९॥

नित्यं व्योम्नि गतागतैर्दिनपतेर्लोकस्य घेषु ध्रुवं

भानुष्यन्दनविप्रकीर्णतुरगभ्रान्तिः परिम्लायती ।

निद्राच्छेदमुदाहरन्ति हरयस्ते मन्दुरामन्दिरा

लक्ष्मीमङ्गलदुन्दुभिप्रतिभटैः प्रत्यूषहेषारवैः ॥९०॥

रक्षः संक्षयहेतुगोत्रजननाद् बन्धं विधाता च यः

पाथोधेः श्वशुरत्वमेति यमुनाताप्योः प्रसूत्या च यः ।

जातः सोयमशेष विश्वबलभीरत्नप्रदीपाकृतिः

सद्यः संभवडिम्भलोचनमुखग्रास्येण धाम्ना रविः ॥९१॥

उत्थाय मन्युवशतश्चलितुं प्रवृत्ताः

कर्णं गते भटिति कुक्कुटकण्ठनादे ।

किञ्चित्क्षुतादिनिभमात्रमुदीर्य नार्यः

प्राणेशकेलिशयनेषु पुनः पतन्ति ॥९२॥

यः श्रीकण्ठललाटलोचनशिखिप्लुष्टस्य चेतोभुवः

श्रीखण्डद्रवपाण्डुरेण महसा धारागृहस्थं गतः ।

अस्तः हमाधरमस्तके स भगवानालक्षयते चन्द्रमाः

हौद्रासकृपिशकुमाहिषदधिष्ठात्रावदातच्छविः ॥९३॥

नरपतिभिरलङ्घ्यशासनोसौ शिरसि मनोभवशासनं दधानः ।
वचनमिति निशम्य सागधीनां भुजमुपधानपदाच्चकर्षादेव्याः ॥९५॥

इति श्रीविक्रमाङ्कदेवचरिते महाकाव्ये त्रिभुवनमल्लदेवविद्यापति—

कारमीरकभट्ट श्रीविल्हणविरचित एकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

दिनानि तत्र क्षणवद् बहूनि नीत्वा विलासैः कुसुमास्त्रभिन्नैः ।
 ग्रीष्मप्रवेशे सह पद्मलादया देवोऽथ कल्याणसमीपगोऽभूत् ॥१॥
 अस्मिन्क्षणे कुन्तलपार्थिवस्य प्रवेशमाकर्ण्य पुराङ्गनानाम् ।
 आसन्नविलासव्रतदीक्षितानां स्मरोपदिष्टानि विचेष्टितानि ॥२॥
 विस्रस्तरत्नाङ्कुरकोटिभिन्नमुदञ्जितं वामपदं दधाना ।
 बभार कापि व्रतमेकपादमाराधनायेव नरेश्वरस्य ॥३॥
 कीर्णाश्रु कर्णोत्पलरेणुनैकमन्यत्सहासं नयनं वहन्ती ।
 संकीर्णभावाभिनयप्रगल्भा रराज कापि स्मरनर्तकीव ॥४॥
 गवाक्षरन्ध्रैरवलोकयन्ती लक्ष्मीकृता कापि मनोभवेन ।
 किप्यनङ्गस्य नितान्तचण्डकोदण्डपाण्डित्यमुदाजहार ॥५॥
 वराङ्गना कुङ्कुमपाटलाङ्गी सलीलमुत्तम्भितबाहुवल्लिः ।
 रागप्रवाहे गहने निमग्ना काचित्करालम्बमयाचतेव ॥६॥
 वीराग्रणीरेष नृपः स्थितोऽग्रे शूरोसि चेदत्र विधेहि शौर्यम् ।
 भयास्पदं स्त्रीषु विरक्त्यनेति काचिद्विरामन्मथमुन्ममाथ ॥७॥
 नरेन्द्रलीलातपवारणस्य नेत्राञ्जलीत्येन समीरणेन ।
 निवार्यमाणश्रमवारिलेशा कृतार्थमात्मानममन्यताऽन्या ॥८॥
 तम्बेरमारूढमगूढभावा निरीदय कापि क्षितिपं मृगाक्षी ।
 मन्ये समानप्रतिपत्तिहेतोः कन्दर्पमत्तद्विपमारुरोह ॥९॥
 निरादरं वीदय नृपं मृगादया लीलानमत्कन्धरया कथापि ।
 हृदि स्थितः कार्मुककर्षणार्थमयाच्यतेव प्रसभं मनोभूः ॥१०॥
 वाचालकाष्ठीमणिकिङ्किणीकमुच्चैःक्वणत्कङ्कणमुच्चलन्ती ।
 आलोकिता कापि नरेश्वरेण वैदग्ध्यगर्वोद्गुरकन्धराभूत् ॥११॥
 ताडोदलेन श्रवणान्निपत्य श्वासानिलैरुल्लसतातिदूरम् ।
 अदत्त वैदग्ध्य विवादहेतोर्वराङ्गनानामिव पत्रमेका ॥१२॥
 गतेषु मन्दत्वमयं रुषा मे बहो नितम्बः सुतरां विधाता ।
 इतीव काञ्चीवल्लभं विमुच्य त्वरावती कापि पुरः प्रतरुषे ॥१३॥

काचिन्नितम्बार्पितवामहस्ता दोर्लखया कुञ्चितया नताङ्गी ।
 क्षमापतौ मार्गणमोक्षदक्षमकल्पयच्छापमिव स्मरस्य ॥१४॥
 औत्सुक्यतः कापि जवाद् ब्रजन्ती लीलामरालैरनुगम्यमाना ।
 अन्यायभीत्येव नृपं विलोक्य विलासिनी हंसगतिं मुमोच ॥१५॥
 पार्श्वस्थितामालपति क्षितीन्दौ देवीमनङ्गोत्सववैजयन्तीम् ।
 व्यावर्तितः कोपनया कयापि सस्पर्धमर्धग्रहितः कटाक्षः ॥१६॥
 नृपान्तिकप्राप्तिकृतोपकारे मार्गेवकीर्णैः पदयावकाङ्क्षैः ।
 प्रतिक्षणं कापि मृगायताक्षी पूजामिवास्भोजदलैश्चकार ॥१७॥
 लीलावलत्कण्ठमकुण्ठभावा निरीक्षिता कापि नरेश्वरेण ।
 मुमोह पुष्पायुधभिल्लभल्लभिन्ना कुरङ्गीव कुरङ्गकाक्षी ॥१८॥
 सविभ्रमभूलतिकानुवेलमुद्धेललावण्यरसोत्तरंगा ।
 अनङ्गमारूढमपाङ्गरङ्गे वराङ्गना नर्तयतिस्म काचित् ॥१९॥
 जृम्भासमास्फोटकराङ्गुलीकमखर्वदोर्वेणिकया कयाचित् ।
 निरीक्ष्य राजानमजातरागमतर्ज्यतेवातिरूषा मनोभूः ॥२०॥
 शोणाश्मवातायनसोन्नि कापि स्थिता शरच्चन्द्रमरीचिगौरी ।
 आत्मानमिद्वार्चिषि कामवन्हौ क्षीराहुतीभूतमिवाचवत्ते ॥२१॥
 अभ्यागते कुन्तलभूमिपाले विधातुमातिष्ठ्यमिवोत्थितेन ।
 काचिन्नियुक्ता मकरध्वजेन दीर्घा कटाक्षस्रजनमाततान ॥२२॥
 प्रयासि हारत्रुटिमप्युपेक्ष्य भ्रष्टोत्तरीयापि न तिष्ठसि त्वम् ।
 ध्रुवं प्रधावस्यवधोरणेन परिच्युतस्याधरवाससोपि ॥२३॥
 न दूषणं भूषणवर्जिता यज्जवेन राजाभिमुखी गतासि ।
 चित्रं तु तुङ्गस्तनभारगर्वाद्गृहीतमप्युज्ज्वलसि कञ्चुकं तत् ॥२४॥
 मार्गे समेपि स्खलनच्छलेन किमुच्छलत्कष्टरवं मुखं ते ।
 मुग्धे कुमार्योपि कलाभिरत्र जयन्ति कान्तामपि मन्मथस्य ॥२५॥
 असंशयं नीलसरोरुहाक्षि समारूरोह त्वयि पञ्चबाणः ।
 दुतैर्विनिर्वासि पदैर्यदेषा कशाहतेवोत्तरला तुरंगी ॥२६॥

अस्माकमालोकनविग्रहेतोस्तरङ्गिताङ्गी पुरतःस्थितासि ।
 किं तुङ्गवातायनसङ्गतानां करोषि मात्सर्यपरा परासाम् ॥२७॥
 प्रकाशयन्ती कतिचिन्नाङ्गान् किं चण्डि चण्डत्वमदं विभर्षि ।
 कासामिहानंगजयास्त्रमित्रैर्न गात्रमुच्चित्रितमर्थचन्द्रैः ॥२८॥
 वैदग्ध्यगर्वस्तव सर्वदास्ति कथंचिदाराधय राजचन्द्रम् ।
 नामाङ्कितामर्पय वर्णमालां सुवर्णपत्रे मकरध्वजस्य ॥२९॥
 ससंभ्रमभ्रूयुगताण्डवानां विलासकोदण्डपुरस्कृतानि ।
 सानन्दमित्थं पुरसुन्दरीणां नृपेन्दुना शुश्रुचिरे वचांसि ॥३०॥
 श्वश्रून् मुहुः श्रोत्रकठोरवाचं निरीह्य पृष्ठे विनिवारयन्तीम् ।
 अनङ्कुशत्वात्कृतपुरण्यमेका पण्याङ्गनात्वं गण्यांबभूव ॥३१॥
 काचित्पदैरखलितैः सखेलं यातीषु शुद्धान्तकरेणुकासु ।
 राजाङ्गनानामकरोदवज्ञां श्रोणीभरे वस्थितगौरवेव ॥३२॥
 दृशां भृशं कामवशीकृतानां कस्याश्चिदालोकनकौतुकिन्याः ।
 कर्णावतंसे च निजाञ्चले च गतागतं योजनमात्रमासीत् ॥३३॥
 उल्लङ्घ्य वीथीमथ राजहंसः पुराङ्गनालोकनवागुराणाम् ।
 विवेश हर्म्याङ्गणकेलिवापीहंसावतंसां निजराजधानीम् ॥३४॥
 प्रसाददानेन दृशार्द्रया च स तत्र संतोष्य समस्तलोकान् ।
 अन्वप्रहीदद्भुतयौवनोष्मा ग्रीष्मानुरूपामुपभोगलक्ष्मीम् ॥३५॥
 लावण्यलीलातरुकुड्मलाभमुक्ताविभूषः शुशुभे नरेन्द्रः ।
 त्रैलोक्यनेत्रामृतनिर्भरस्य सशीकरासार इव प्रवाहः ॥३६॥
 मुक्तावदातश्रमवारिलेशविशोभिलावण्यरसप्रवाहः ।
 साधर्यमर्णानिधिना बभार स ताम्रपर्णीप्रणयीकृतेन ॥३७॥
 श्रीखण्डपाण्डुस्तनमण्डलाभिरालिङ्गितोऽसौ मुहुरङ्गनाभिः
 न केवलं ग्रीष्ममहोष्मसङ्गमनङ्गतीव्रातपमप्यजैषीत् ॥३८॥
 स चन्दनालेपनशीतलेन गात्रेण चित्रं नरनाथचन्द्रः ।
 प्रविश्य त्रिलोके सुशोभनात्सजङ्गताम्रज्वरमावृतान् ॥३९॥

अङ्गान्यलङ्घयन्त विलेपनेन नृपप्रकाण्डस्य विपाण्डुराणि ।
 समुच्छलन्त्या प्रणयीकृतानि लावण्यरत्नाकरवेलयेव ॥४०॥
 अङ्गद्वये भूवलयावतंसः श्रीखण्डलीलातिलके वभार ।
 जयामृतास्वादनतत्परापाः साम्राज्यलक्षणा इव रूप्यपात्रे ४१
 विभज्य दोभ्यां दधतो धरित्रीं तस्यांसयोश्चन्दन चित्रकाभ्याम् ।
 ईषत्तुषारस्फटिकाचलेन्द्रशङ्खद्वयीव प्रकटीवभूव ॥४२॥
 अंसद्वयेन श्रियमाससाद स चन्दनस्थासकसुन्दरेण ।
 दोर्मन्दरालोडितसंगराटिधपीयूषपिण्डद्वयपाण्डुनेव ॥४३॥
 मपेन्दुना चन्दनचारुलेखा ललाटपट्टे लिखिता दधार ।
 वत्क्रारविन्दस्थितसूक्तिदेवीदेवार्चनस्फाटिकलिङ्गभङ्गीम् ॥४४॥
 वपुस्तुषाराचलतुङ्गमस्य व्यराजदालेपनचन्दनेन ।
 विश्वप्रविष्टार्कमयूखतापशान्त्यर्थमाश्लिष्टसिवेन्दुभासा ॥४५॥
 शङ्कारपाथोद्यितरङ्गभङ्गिरनङ्गविद्याधरखङ्गलेखा ।
 विलासिना संस्क्रियते स्म तेन स्नानावसाने कवरी प्रियायाः ४६
 वक्षःस्थले कुन्तलपार्थिवस्य श्रीरुरडभूपातिलकश्चकासे ।
 लक्ष्मीतुलाकोटिरवैर्मुखेन्दोः सरस्वतीहंस इवावतीर्णः ॥४७॥
 शैत्यार्थमस्योद्वहतः कराब्जे चक्राभमम्भोरुहिणीपलाशम् ।
 करान्तरे विश्रमपुण्डरीकं रराज शौरेरिव पाञ्चजन्यः ॥४८॥
 रराज राजीवविलोचनस्य हृदि स्थिता चन्दनपङ्कलेखा ।
 मृणालिका वक्त्रगतोक्तिदेवीविमानहंसाननविच्युतेव ॥४९॥
 प्रदर्शयन्तीव तुषारवर्षे विसारिणा शीकरडम्बरेण ।
 समन्ततः स्फाटिककुट्टिमेन हिमं शिलीभूतमिवोद्वहन्ति ॥५०॥
 परिस्फुरत्कैतकपत्रभङ्ग्या घण्टासहस्रैरिव दन्तुराणि ।
 अद्भुतसूर्याणि घनोपमानां नीरन्ध्रबन्धात्कदलीदलानाम् ॥५१॥
 गवान्जालान्तरनिर्यदच्छनीरन्ध्रधारानिकरच्छलेन ।
 निदाघसंरोधविसृज्याय व्यापारयन्तीव पृषत्कपङ्कतिम् ॥५२॥

अत्यन्तशैत्यादिव संकुचद्विरसृष्ट पूर्वाणि करैः खरांशोः ।
 दुर्गाणि घर्मेपि हिमर्तुजीवरत्नक्षमाणीव कृतानि धात्रा ॥५३॥
 धारागृहाणि क्लममार्जनेन स्मरस्य चापश्रममादिशन्ति ।
 मृगेक्षणाभिः सममध्युवास मध्यंदिने मध्यमलोकपालः ॥५४॥
 चोलान्तकश्चन्दनपाण्डुरेषु नितंबिनीनां स्तनमण्डलेषु ।
 सम्राज्यमानमूजगत्त्रयस्य मेने मनोजन्मनराधिपस्य ॥५५॥
 हिमाद्रिशङ्काधिकशीतलेषु वराङ्गनातुङ्गकुचस्थलेषु ।
 घोरं निराकर्तुमसौ निदाघं विलेपनापाण्डुषु पण्डितोभूम् ॥५६॥
 स्त्रीणासनालेपनशीतमङ्गं विपाटलः पाटलया समीरः ।
 स्मरस्य वीरव्रतरत्नशाय तस्मिन्बभूव स्मितमल्लिका च ॥५७॥
 प्रतारिताः कान्तिजलैर्वधूनां निपत्य यत्पाथसि दुग्धमुग्धे ।
 न क्षीरनीरप्रविभागहेतोरन्यत्र हंसाः पुनरुत्सहन्ते ॥५८॥
 रणद्विरेकेषु सरोरुहेषु यत्रोपविष्टाः प्रतिभान्ति हंसाः ।
 समर्प्य लीलागमनं गृहीतमञ्जीरनादा इव सुन्दरीभ्यः ॥५९॥
 यत्पङ्क्तैः स्नानविनोदभाजां जाने नरेन्द्रप्रमदाजनानाम् ।
 मुखेन्दुविम्बैरविरोधहेतोः समर्पिता पादतलेषु लक्ष्मीः ॥६०॥
 श्रोणीतटोल्लासितरङ्गदोलाविलासवाचालितसारसासु ।
 स तासु रेमे सह कामिनीभिर्दीर्घासु लीलावनदीर्घिकासु ॥६१॥
 विश्रान्तकान्ताकरयन्त्रधारं सरोजिनीपत्रममुष्य हस्ते ।
 शोभां बभार स्मरकङ्कपत्रमैत्रीजुषः श्यामलखेटकस्य ॥६२॥
 मीनाङ्कमीनस्य नरेन्द्रचन्द्रशरीरलावण्यजले स्थितस्य ।
 असूत्रयद्वाडिशसूत्रशङ्कां दीर्घा मृगाक्षीकरयन्त्रधारा ॥६३॥
 स राजहंसः करयन्त्रमुक्तधारालतापञ्जरमध्यवर्ती ।
 उपायनीभूत इवाङ्गनाभिः क्षिप्तः करे मन्मथपार्थिवस्य ॥६४॥
 तमेकवीरं करयन्त्रवारां धाराशतैर्व्याकुलितं वधूभिः ।
 निःशङ्कमारोपितचापदण्डः शिवाश्रव्यं मदनश्चकार ॥६५॥

क्षतनाङ्गरागे लटभाङ्गनानां नरेन्द्रधाराम्बुदुते मनोभूः ।
 रागं हृदि प्रच्युतिशङ्कयेव माञ्जिष्ठरागप्रतिमं ततान ॥६६॥
 देवः कराम्भोरुहयन्त्रधारां क्षिपन्कपोले विपुलेक्षणायाः ।
 कुमुद्वतीकामिनि रश्मिदण्डं प्रवेशयन्नर्कं इव व्यराजत् ॥६७॥
 आनम्य लीलापरिवर्तनेन विलङ्घयामास नरेन्द्रमुक्ताम् ।
 कण्ठोन्मुखीं काञ्चनकम्बुकण्ठी स्मरासिधरामिव वारिधाराम्
 चकार कान्ताकुचपन्नभङ्ग कस्तूरिकापङ्ककलङ्कितानि ।
 वर्षाजलभ्रान्तिविलोल हंसहासानि लीलासरसीपयांसि ॥६८॥
 नृपावरोधस्तनकुङ्कुमेन वापीपयः पाटलतामवासम् ।
 क्रीडानिमग्नस्मरकुम्भिकुम्भसिन्दूरसम्भिन्नमिवावभासे ॥६९॥
 रराज कपूररजस्तरङ्गससङ्गलीलाङ्गणदीर्घिकाणाम् ।
 गौरीपतिक्रोधहुताशशान्त्यै मग्नस्य भस्मेव मनोभवस्य ॥७१॥
 अवाप कृष्णागुरुधूपधूमत्यक्ताद्रभावेषु कचोच्चयेषु ।
 आश्चर्यमिन्दीवरलोचनानां नितान्तमार्द्रत्वमयुग्मबाणः ॥७२॥
 असंनिधानात्कुसुमाकरस्य पुष्पायुधः क्षीणनिषङ्गभारः ।
 वामभ्रुवां सस्मितमल्लिकेषु धम्मिल्लबन्धेषु धृतिं बलबन्ध ॥७३॥
 नेत्राणि धात्रीतिलकाङ्गनानां तरङ्गलेखाहतकण्ठलानि ।
 शालोपलान्दोलननिष्कलङ्क कामास्त्रमैत्रीं कलयांबभूवुः ॥७४॥
 लीलावगाहच्युतकुङ्कुमेषु लक्ष्यस्तदङ्गेषु नखाङ्गमार्गः ।
 शङ्कररत्नाकरतीरभाजां मुद्रां दधे विद्रुमपल्लवानाम् ॥७५॥

व्यधित तदनु देव्याः पत्रवल्लीं कपोले

विपुलपुलकलेखादन्तुरः कुन्तलेन्दुः ।

प्रतियुवतिभिरर्धे ताडितः पाण्डुराण्ड-

स्थलविलुठितवाष्पव्यक्तिलक्ष्यैः कटाक्षैः ॥७६॥

रचयति कचलीलाबन्धमुत्कन्धरायाः

स्वयमवनिमृगाङ्गे कौतुकेन प्रियायाः ।

स्थितमुपचितचिन्तातापताम्यत्कपोल-
ग्लपितकरसरो जसस्तराभिः पराभिः ॥७७॥

मधुसमयविरामक्षामवीर्यस्य शौर्यं
बहुभिरिति चरित्रैः सूत्रयन्पुष्पकेतोः ।

शिशिरमिव वमद्भिः प्रेयसीगात्रसङ्गै-
रपि जटमजैषीद्ग्रीष्मगर्वं नरेन्द्रः ॥७८॥

इति श्रीविक्रमाङ्कदेवचरिते महाकाव्ये त्रिभुवनमल्लदेवविद्यापति
काश्मीरकभट्टश्रीबिल्हणविरचिते द्वादशः सर्गः ॥१२॥



प्रतापमारोप्य परां समुन्नतिं यशः प्रदर्श्यैव च दावभस्मभिः ।
 भजन्निदाघः कृतकृत्यतामिव स्वपौरुषाविष्करणान्यवर्तत ॥१॥
 विधाय तैक्ष्ण्यं गणितान्यहानि स प्रतापहानेः प्रणयित्वमाययौ ।
 परोपतापैक परायणाश्चिरं क्व वा भवन्त्यभ्युदयस्य भूमयः ॥२॥
 दधानलप्लुष्टवनान्तभस्मभिः क्षमाधराः पारुडुचश्चकासिरे ।
 गता इवाङ्गे स्थितबालवृक्षकक्षयोत्थवैराग्यवशात्तपस्विताम् ॥३॥
 निदाघसंपादितकार्श्यसंपदां तरणिणीनां गलिता नितम्बतः ।
 कलप्रलापाः कलहंसपङ्क्तयश्चकासिरे विभ्रमसेखला इव ॥४॥
 रवेः समस्तक्षितिसध्यगं रसं निपीय पीनत्वमतोऽत्र विभ्रतः ।
 भरेण वाजिष्ठिव मन्दगामिषु कञ्चन दैर्घ्यं दिवसाः प्रपेदिरे ॥५॥
 न गन्तुमन्याः पदमप्यपारयन्ति तान्तदीर्घं तनिमानमागताः ।
 हिमाद्रिजाताभिरलम्भि केवलं नदीभिरब्धेः परिरम्भणोत्सवः ॥६॥
 तुषारशैलद्रवनिर्भरोदकं क्षमाहरन्नुत्तरभूमिनिम्नगाः ।
 हिमोपचारार्थमनेकवाहिनीवियोगतप्तस्य सरित्पतेरिव ॥७॥
 प्रबुद्धकाश्याः परितापसंकुचत्सपङ्कपङ्के लहिणीदलाङ्किताः ।
 दशमलब्धाब्धिसमागमाश्चिरं वियोगयोग्यामभजन्त निम्नगाः ॥८॥
 दृशं प्रपापालिकया प्रकाशिते न्यवेशयत्कुम्भधिया कुचद्वये ।
 विवेद पान्थः कलशात्परिच्युतां न वारिधारां मुखसङ्गिनीमपि
 पपुः प्रपापालिकया समर्पितं चिरेण पान्थाः कथमप्यनादरात् ।
 तदीयबिम्बाधरपानलम्पटाः सपाटलामोदमपि प्रपाजलम् ॥९॥
 निरन्तराघटितपाटलाधराः क्रमान्निदाघस्य घनोष्मसङ्गिनः ।
 व्यंरसिषुः श्वासममीरणा इव प्रबुद्धदावानलबन्धवोनिलाः ॥१०॥
 गतायुषि ग्रीष्ममहोष्महम्बरे दिनेपि चञ्चत्पुटकैर्विलासिभिः ।
 कुचस्थलोचन्दनलेपपङ्किलप्रियाङ्गपालीसुखमन्वभूयत ॥११॥
 परस्परश्वाससमीरघट्टन त्रुटत्कपोलस्थलघर्मबिन्दुभिः ।
 अपि प्रदोषावसरे विलासिभिः करम्बितान्योन्यभजैरसुप्यत ॥१२॥

अपङ्कजस्रस्तरमस्तचन्दनं विलाससंमर्दममन्दमाश्रिताः ।
 शनैर्निदाघस्य घनामदर्शयन्प्रतापहानिं हरिणायतेक्षणाः ॥१४॥
 अपश्यदस्मिन्समये महीपतिः पयोदखण्डं मिलितार्कमण्डलम् ।
 सकुण्डलं वारिमुचामनेहसः कुतोपि मूर्धानमिवार्थनिर्गतम् ॥१५॥
 निदाघनिःशेषिततोयसम्पदः समुद्रुतं वारिदिद्रुतया सुरैः ।
 नभः ख्ववन्त्या इव पङ्कमङ्कतः क्षमापतिर्बालपयोदमैक्षत ॥१६॥
 शनैरवाप्तोपचयं पयोमुचं विलोक्य कौतूहललोललोचनाम् ।
 अथाङ्कपर्यङ्ककृतास्पदां प्रिया मवोचत दमातलमीनलाञ्छनः
 नभस्तलारण्यतमालमालिका महीभृतां मूर्धसु मूर्धजावलिः ।
 तडित्प्रदीपाञ्जनपुञ्जसन्निभा विभाव्यतां सुभ्रु नवाभ्रमण्डली
 घनोपरोधान्तरलाक्षि लक्ष्यते मलीमसं मण्डलमुष्णदीधितेः ।
 क्षणप्रभादीपसमुत्थकज्जलग्रहोत्कवर्षोर्पितकर्परोपमम् ॥१७॥
 मृगान्ति पश्य प्रसभं नभश्चरीविलासकृष्णागुरुधूपमण्डलैः ।
 करस्मिन्वतः षट्पदमेचकैरिव प्रयाति सद्यः प्रचुरत्वमम्बुदः ॥१८॥
 अनेन नूनं जलधेः समुद्रुतं विचित्ररत्नाङ्कुरदन्तुरं पयः ।
 अनेकवर्णाञ्चितमन्यथा कथं पयोमुचा निर्मितमिन्द्रकार्मुकम् २१
 ध्रुवं दिवि ग्रासगृहीतपक्ष्मस्फुरत्फणारत्नमयूखकन्दकैः ।
 घनोन्मुखानां शिखिनां मुखोद्गतैरकारि शातकृतवं शरासनम् ॥२२॥
 नितम्बविम्बेषु वसुन्धराभृतां घनाः स्फुरन्नीलदुकूलविभ्रमाः ।
 निपत्य वीथीषु किरातवेश्मनां हताच्छभल्ल प्रतिमल्लतां गताः ॥२३॥
 अकृत्रिमाः काण्डपटाः पयोमु वदतडिद्रुधूलास्यरहस्यभङ्गिषु ।
 निदाघतप्ते नभसि स्फुरन्त्यमी गलज्जलाद्राः सदृशाः कृशोदरिरु
 अदभ्रमभ्रोपलपट्टकेषु ये शितीक्रियन्ते मद्नेन पत्रिणः ।
 तडिल्लता तन्निकषोत्पपावकस्फुलिङ्गभङ्गीं ललितांगि सेवते ॥
 अमी गृहीत्वेव पयोधिमध्यगक्षमाधरक्षेमकथामुपा गताः ।
 घनाः समारुधशिखरिडिताण्डवं विमृदयन्ति ध्वनिमद्रिसानुषुरद

द्विषन्ति राजीवमुखिं स्वजीवितं ध्रुवं मयूरास्तव निर्जिताः कचैः
 भवन्ति यद्वासवचापसंमुखाः शिलीमुखप्राप्तिसमुत्सुका इव ॥२७॥
 जिगीषवः प्रवृषि मुक्तकामुकाः प्रगल्भते शक्रधनुः क्व कर्मणि ।
 अवैमि संप्रत्यविलङ्घ्यशासनं शरासनं मान्मथमेव मानिनि ॥२८॥
 अयं निदाघस्य तनोति पाटवं समस्तपृथ्वीरसकर्षणैः करैः ।
 उदङ्मुदङ्गण्डतडित्करस्त्वषामधीशमित्याक्षिपतीव वारिदः ॥२९॥
 निदाघबन्धोस्त्वषमुष्णदीधितेरपि प्रविष्टामिह मण्डलोदरे ।
 अवैमि निर्वापयितुं मृगेक्षणे रुणद्धि तारारमणं बलाहकः ॥३०॥
 निदाघमाग्रातजगत्त्रयं क्रुधा विधाय लीलाकवलं बलाहकः
 इतो वलाकाभिरवस्थितां मुखे तदस्थिमालामिव दर्शयत्ययम् ॥३१॥
 अवाप्य शिन्नां गतिषु त्वदन्तिकाजजगत्त्रयीदुर्लभभूरिभङ्गिषु !
 प्रयान्ति हंसाः सुरहंसमण्डलीगुहत्वलोभादिव सुभ्रु मानसम् ॥३२॥
 द्रवन्ति हंसाः सुरचापचुम्बिनः पयोदवृन्दान्निपतत्सु बिन्दुषु
 प्रवर्तमानाङ्गुलिकाद्गुर्मुखाद्विशङ्कमाना इव गोलकावलिम् ॥३३॥
 अपन्हुताञ्चक्षुपुटैः शिखण्डिनां प्रकाशिताः कोमलकूजिताङ्गुरैः ।
 पतन्तिकृच्छ्राद्भुविपान्थयोषितांकवोष्णनिःश्वासकदर्थिताः कणाः
 ग्रहीतुमेते निजचञ्चुकोटिभिर्भट्टित्यनभ्यासवशान्न पारिताः
 क्षितौ लुठन्तः शितिकण्ठशावकैरसूयिताः सुभ्रु नवाभ्रबिन्दवः ॥३४॥
 तृणानि भूभृत्कटकेषु निक्षिपन्त कैः स्फुरद्दीरमृदङ्गनिस्वनः ।
 तडित्प्रदीपैश्चलदङ्गलीलया निदाघमन्विष्यति वारिदागमः ॥३५॥
 नमत्ययः श्यामलशृङ्गमण्डलस्थितेन्द्रगोपप्रचयासु वारिदः
 गिरिस्थलीषु च्युतशक्रकर्मकभ्रमादिवोद्भ्रान्ततडिद्विलोचनः ॥३६॥
 अमी वियन्तीलसरोजमण्डलप्रलम्बनालप्रतिमल्लडम्बराः ।
 अनङ्गनाराचपरंपरानिभाः पतन्ति धारानिचयाः पयोमुचः ॥३७॥
 अनङ्गशस्त्राणि नतांगि तीक्ष्णतां नयत्ययस्कार इवाम्बुदागमः
 मलीमसाङ्गाररुचां पयोमुचां तथाहि मध्येज्वलितस्तडिच्छिखी ॥३८॥

निदाघ मित्रेण विसृजितं जलं तवप्रियेणाखिलमुष्णरश्मिना
 क्रुधेति धारालगुडैर्बलाहकस्तडित्ययं ताड्यतीव पद्मिनीम् ॥४०॥
 कृतक्षणं वृद्धनदीसमागमे तरंगिणीनाथमवेक्ष्य संप्रति ।
 विलङ्घ्य मार्गं सहसा महापगाः पतन्ति नीचेषु नदान्तरेष्वपि
 इयं नमन्ती नभसः पयोभरादवैमि नीलोत्पलभङ्गिनिर्मला ।
 करोति सर्वत्र विलोक्य कर्दमं पयोदमाला पदमद्रिसानुषु ॥४२॥
 ध्रुवं कयाचित्कथया पयोनिधेः स्तनद्विरभ्रैः सरितः प्रकोपिताः
 प्रयान्ति सद्यः कलुषाः सरित्पतिं तथा हि कोलाहलमांसलोर्मयः ४३
 तरंगिणीनाथसमागमत्वरप्रधाविताः शैलनदीभिरन्तरे ।
 निरुध्यमानाः कलहं महारदैर्विसुद्रयन्तीव समुद्रवल्लभाः ॥४४॥
 जलेन भिन्ना कियती वसुन्धरा मदपितेनेति परीक्षितुं घनाः
 सहास्त्रुधाराभिरधीरलोचने क्षितौ शलाका इव निक्षिपन्त्यमी ४५
 इतस्ततः शीकरमौक्तिकोत्करं नदाः किरन्तः समदाभिरुर्मिभिः
 प्रतारणायैव समुद्रयोषितां समुद्रवेषेण चरन्ति वर्त्मसु ॥४६॥
 क्षपासु संप्रत्यधिसारिकाजनः स्खलत्पदं कर्दमपिच्छिले पथि
 करोति कार्तस्वरदण्डशङ्कया तडिल्लताया मवलम्बनादरम् ॥४७॥
 नताङ्गि लीलाकमलाकरेण ते तरङ्गदण्डैः प्रतिविम्बतो घनः ।
 अशेषपानीयसमृद्धिसंक्षयाद्भजनिवार्थित्वमनेन ताड्यते ॥४८॥
 गृहीतभासीत्सलिलं बलाहकैः कलान्तरेण ध्रुवमम्भसां निधेः
 यदेतदीयानि जलानि गृह्णते विधाय कोलाहलमब्धिवल्लभा ४९
 समर्पयामास पयांसि निश्चितं कयापि वृद्धया जलधिः पयोमुचाम्
 महागिरिप्रस्थसहस्रशोधितं यदम्बु गृह्णन्ति समुद्रयोषितः ५०
 करोति नोरन्ध्रसोपवृंहणात्तरंगिणीरेष मदङ्गसङ्गिनीः ।
 इति ध्रुवं पुष्यति रिक्तमागतं बलाहकं बालमृगाक्षि वारिधिः ५१
 विलीय नीलस्तडिदूढमणा घनः कपालरङ्गः किमजायत क्षितेः
 जराविमुक्तेव मृगा क्षिलप्यते यदुदगतश्यामल शस्यकुन्तला ५२ ॥

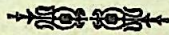
न वेद्मि कस्मिन्समये तथाविधाः तरंगिणीभर्तुरकीर्तिरुत्थिता
 नमोनमः कुम्भभुवे भवेदसौ तदङ्गनानामपि संमुखोद्य चेत् ॥५३॥
 पयोदवृन्दं गगनस्थलोल्लसत्तडिल्लतादोहदकर्मयुति ।
 चकास्ति संक्रान्तकलङ्कमम्भसां नमश्च्युतानामिवगालनांशुकम् ५४
 स्वभावनीलाः कथमत्र लक्ष्यतां प्रयांति नीलासु पयोदपङ्क्तिषु ।
 इति ध्रुवं सम्प्रति वाजिनो भयाद्विभर्तिगाढग्रहमर्कसारथिः ॥५५॥
 क्षणप्रभां नूनमपश्यतः प्रियां तवायमाक्रन्दरवः पदे पदे ।
 पयोद यज्जोदयते दयापि ते वियोगिवर्गे तदहो महाद्भुतम् ॥५६॥
 ध्रुवांत्वया संततमङ्गललिता तडिल जानाति परव्यथामियम् ।
 अमन्यरं पान्थवधूकदर्शनान्निषेधति त्वां न किमर्थमन्यथा ॥५७॥
 कथंचिदायाति प्रियस्तदावयं न निश्चितं विश्वसिमः पुनस्त्वयि
 मुहुः सपृश्नन्विष्णुपदं नवाम्बुद स्वकार्थ्यतात्पर्यमलं न मुञ्चसि ॥५८॥
 न केवलं ते बहिरेव नीलिमा नितान्तमभ्यन्तरमप्यनिर्मलम् ।
 यदध्वगस्त्रीवधपातके घन प्रयासि मन्त्रित्वमयुग्मपत्निः ॥५९॥
 अदक्षिणापि प्रियकाङ्क्षिणीष्वहो त्वमेतदेकं विदधासिः कौतुकम्
 वियोगिनिर्मूलनमूलकण्टकं मृगाङ्कबिम्बं कबलीकरोषि यत् ॥६०॥
 अखण्डतस्त्वं मकराकरादपि प्रभूतमाकृष्य जलं यदागतः ।
 किमुच्यते भाग्यविपर्ययस्य तद्विजृम्भितं पान्थचकोरचक्षुषाम् ॥६१॥
 इदं तव दमाधरशङ्कसङ्गिनो विषापहारौषधिसंगतेः फलम्
 रुणत्सि मार्गं यदनूरुसारथेस्तुरंगवल्माभुजगैरभक्षितः ॥६२॥
 सुरद्विपस्य ध्रुवमब्धिवार्तया कयापि पाथोद गतोसि बन्धुताम्
 भवन्तमुन्मूलयितुं प्रगल्भते दिवि अमन्तं न यदभ्रमूपतिः ॥६३॥
 अलं प्रलापैस्तुषधूमधूसरो विधूय यन्मृत्युशतानि गर्जसि ।
 प्रवासिकान्ताजनपापमूर्जितं तदेति जीमूततवोपकारिताम् ॥६४॥
 स्मरज्वरव्याकुलितः कलावति ब्रवीति पाथोधरमुद्गुरध्वनिम्
 अकुण्ठकण्ठागतवाष्पगद्गदैः पदैरिति प्रोषितवल्लभाजनः ॥६५॥

क्षणद्युतिस्ते क्षणमस्तु मान्यथा सदाङ्कपर्यङ्कतले निषीदतु ।
 घन त्वदीयध्वनिङ्गिडिमं विना पति लभन्ते कथमध्वगाङ्गनाः६६
 न षोडशीमप्युपयाति ते कलां प्रसिद्धिमात्रं स्मरबान्धवो मधुः
 शिरस्यकुर्वन्मदनस्य शासनं मुखं त्वदीयं मलिनं सहेत वा॥६७॥
 समागतप्राणसमा करोति का न ते सपर्याविधिमध्वगाङ्गना ।
 पुनः प्रियोस्याः किमतः परेण वा घन त्वमेवाशुकविर्भवोपरि६८
 वियोगिनां संचटने भवत्ससः परोस्ति जीमूत न दूतकर्मणि
 वदन्ति नान्यैः सहयाः कुलस्त्रियो धूवं तदर्थं वहसि क्षणप्रभाम्६९
 विमुक्तवेणीबलयाः पुरंध्रयः प्रियाङ्गपालीपरिवासशीतलाः ।
 अनङ्गसाम्राज्य विलासमंत्रिणः प्रभावमम्भोद निवेदयन्ति ते॥७०॥
 स्मरातुराणां विदधासि दुर्दिनं प्रियाभिसाराय कुरंगचक्षुषाम्
 रतोत्सवे काण्डपटत्वसैषि च त्वमग्रणीर्मेघ परोपकारिणाम् ७१
 विभातवर्गे जलद त्वमग्रणीर्न चन्द्रिकापि द्युतिमेति तावकीम्
 करोषि किं शुभ्रतया तदीययान सुन्दरं चन्दनमेणानामितः॥७२॥
 करोति चैत्रः सह चन्दनानिलैः किमिन्दुना कोकिलपञ्चमेन च
 न विद्यते जेतुरनङ्गभूपतेः किमन्यदेकोङ्ग भटस्त्वया समः ॥७३॥
 पयोद यासां भवतोपि दर्शनान्न बल्लभः सङ्घटते सृगीदृशाम्
 न ताः क्रियन्ते गणनासु दुर्भंगाः करोति कश्चिन्न मजातभित्तिषु ७४
 समागते प्रेयसि चाटुकारितामितःस्मितक्षालितपाटलाधराः
 भजन्ति काश्चिद्विमलेन चेतसा विलासभीत नयनाः पयोमुचः ७५
 अलङ्घ्यरत्नाकरसङ्गमाश्रिता तथा गता ग्रीष्मदिनेषु तानवम् ।
 अदृष्टदुःखेव सखि प्रयासि मे कुतः प्रियालिंगनभंगहेतुताम्॥७६॥
 मुहूर्तं मामीलत मूर्तिरम्बरं विगाहसे फालविलङ्घनीयताम्
 सलीलमुत्तीर्य भवन्ति पांसुलाः समुल्लसन्मांसलकान्तकेलयः ७७
 घटं समारुह्य बिघटितोर्मयः प्रयान्ति ते पारमवारिताः पराः
 अपुण्यवत्याः पुनरेष मे गतिं भिनत्ति नावापि नितम्बदम्बरः ७८

विधाय कोलाहल मूर्मि भिर्मुधाकिमित्यनाकर्णितकेन वक्ष्यसि
 उपार्जितस्त्रीवधपापसम्पदः कथंपयोधिस्तव सङ्गमेव्यति७९
 नयस्व पारंपुलिनद्वयानुगां तरंग दोलामधिरोप्य मामितः
 प्रसीद यावन्न निशा विशीर्यते यशांसि ते गायतु पांसुलाजनः८०
 सहस्रशः कृष्ण निशास्वहंगता पदं तव न्यस्य शिरस्यवारिता
 समृद्धगर्वेण किमन्धतां मुधां दधासि नन्वस्ति घनात्पयः पुनः८१
 परिस्खलद्वीचिदुकूलपल्लवा वलात्समुद्राभिमुखी प्रधावसि
 करोषि चान्यासुनिषेधमित्यहो स्वयं विमूढासि पारासु पण्डिता
 नितम्बपर्यन्तगलज्जलांशुका समुत्सुका किं कुटिले प्रधावसि
 कुलापगान्तःपुरुवक्त्रचुम्बिनो न लप्स्यसे दास्यमपि त्वमम्बुधे
 मया कुमार्यापि न सुप्तमेकया न जारमुत्सृज्य पुमान्विलोकित
 ष्यनेन गोत्रस्थितिपालनेन मे प्रसन्नतामेत्य भवोपकारिणी॥८२॥
 इति स्मरार्तः प्रमदाजनोधुना निशासु कान्तानभिसर्तुमुद्यतः ।
 न वक्ति कोपात्कतरां तरंगिणीमनंगशृंगारसमुद्रवाहिनि॥८३॥
 अविरलजलधाराधोरणीधौतवस्त्राः
 सपदि मदनहस्तन्यस्तहस्तास्तरुण्यः ।
 किमपि न गणयन्ति प्राणनाथाङ्गपाली-
 रभसंपुलकितांगघः पङ्किलासु स्थलीषु ॥८४॥
 षः स्पर्धामदधान्मृदङ्गनिनदैः सौदामिनीताण्डवे
 यः कोदण्डममर्त्यभर्तुरकरोदृंकरशङ्करूपदम् ।
 मत्तैरावणकण्ठगर्भविलुट्गम्भीरः गर्जाघनः
 सोयं व्योमनि घूर्णते विरहिणीघःताय मेघध्वनिः ॥८५॥
 विद्युत्पङ्कजखण्डपङ्कपटली व्योमस्थलीशाद्वलं
 केदारः कलमाङ्कुरप्रतिभुवां धारालतानामयम् ॥
 शेवालावलिरद्रिमूर्धसरितां सूरेंदुकारागृहम् ॥
 कन्दर्पोत्सववैजयन्ति भवतु प्रीत्यै तवाम्भोधरः ॥८६॥

उत्कर्षाधानहेतुर्निखिलशिखिगलफोडकूजांकुराणाम् ।
 धारावल्लीवनानां मधुकरपटलश्यामलः पल्लवौघः ॥
 दीर्यद्वैडूर्यरत्नामलगगनतलादर्शलीलानिचोल-
 श्रोलस्त्रीकेशपाशैः सह चरति रतिठ्याकुलैः कालमेघः ॥८९॥
 निखिलभुवनलक्ष्मीवल्लभो वल्लभायाः
 प्रकृतिभुगपाकोद्रेकपूर्वतैचोभिः ।
 इति शिरसि दधानः शासनं मीनकेतो-
 र्जलदसमयशोभां वर्णयामास देवः ॥९०॥

इति श्रीविक्रमांकदेव चरिते महाकाव्ये त्रिभुवन मल्लदेवविद्यापति
 काश्मीरक भट्ट विलहण विरचिते त्रयोदशः सर्गः ११३



वार्तुकं दधति वारिदागमे मूर्धजैरिव घनैर्विपाण्डुरैः ।
 विक्रमाङ्गमुपसृत्य निर्जने कश्चिदाप्तपुरुषो व्यजिज्ञपत् ॥१॥
 निष्ठुरं किमपि कथ्यते मया तत्र कुन्तलपते कुरु क्षमाम् ।
 यत्स्वकार्यमवधीर्य गृह्णते स्वेच्छयैव परितोषमीश्वराः ॥२॥
 वत्सलत्वमवलम्ब्य केवलं किं विलङ्घयसि नीतिवर्तिनीम् ।
 यत्र मन्त्रगतिरेति वामतां तत्र हालहलतो विशिष्यते ॥३॥
 चेङ्गिनाथमवजित्य संयति भ्रातुरभ्युदयशंसिना त्वया ।
 प्रेषितस्य वनवासमण्डले वर्तते नयविपर्ययो महान् ॥४॥
 न्यायमार्गमपहाय कुर्वता तेन कोशमविशङ्कचेतसा ।
 सर्वतः सकललोकपीडनादुद्दिहारहरिणाः कृता भुवः ॥५॥
 भूरिसंगरपरिश्रमार्जितां स्वामिनः प्रियतमां वहन्ति ये ।
 दन्तपृष्ठवलयीकृतैः करैर्विष्टरप्रणयिनीमिव श्रियम् ॥६॥
 चुम्बितानि मदनिद्रया मुहुर्ये नयन्ति नयनान्यमुद्रताम् ।
 लोलकर्णपुटवातशीतलैरुच्छलद्बहलदानशीकरैः ॥७॥
 कान्तदन्तविसकाण्डनिर्गमे दानपंकपटले वहन्ति ये ।
 विम्बितं दिवसनाथमण्डलं पुरङ्गरीकमिव मन्दिरं श्रियः ॥८॥
 उल्लिखन्ति दशनैः शिलातलान्युन्मदाः क्षितिधरस्थलीषु ये ।
 तेषु तैदृग्यमिव कर्तुमुद्यताः प्रत्यनीकभटभेदनोद्भटम् ॥९॥
 वत्सलेन भवता समर्पितास्तस्य ते कति न गन्धसिन्धुराः ।
 तद्गलात्किमपिचिन्तयत्यसौ यत्कथापि वितनोतिपातकम् ॥१०॥
 सर्वमाटविक्रचक्रमक्रभव्यापृतस्तलगतं चकार सः ।
 शर्वरेष्ठिव तमस्सु राक्षसाः पापकारिषु मिलन्ति पापिनः ॥११॥
 द्राविडं स नृपतिं सहायतां प्रापयत्यविरतैरुपायनैः ।
 कर्तुमिच्छति न कैरुपक्रमैर्भेदजर्जरमिदं भवद्बलम् ॥१२॥
 भूरिभिः किमथवा कथाद्भुतैस्तत्त्वमेतदवधार्यतां नृप ।
 कैश्चिदेव दिवसैः स सन्मुखः कण्ठवेणिनिकटे भविष्यति ॥१३॥

इत्युदीर्य विरते विशारदे तत्र शारदसृगाङ्गनिर्मलः ।
 नाभ्यधत्त सहसा किमप्यसौ न त्वरां दधति धीरचेतसः ॥१४॥
 किं श्रिया चपलया प्रतार्यसे वत्स मा मति विपर्ययोस्तु ते ।
 प्रत्यपादयदिति प्रतिक्षणं स स्वभाव विमलाशयो नृपः ॥१५॥
 अष्टमग्रजमधर्मतः स्वयं शल्यवन्मनसि धारयास्यहम् ।
 वैशसं महदुपस्थितं परं धिङ्मया कथमिदं सहिष्यते ॥१६॥
 पर्यतप्यत किमप्यनन्तया चिन्तयेति सुचिरं धरापतिः ।
 दैवदुर्विलसितैः कटाक्षितास्तादृशा अनुशयाय न क्रुधे ॥१७॥
 मन्त्रवित्तदनु चारचक्षुषा तत्तथेति बहुधा वधार्य सः ।
 किं विधेयमितिचिन्तयान्वितः क्षमापतिः स्वगतमित्यचिन्तयत् १८
 कार्यसे कथमकार्यमीदृशं वत्स दुर्नयपताकया श्रिया ।
 किं न वेत्सि यदतीत्य वर्तते नारदं कलहकौतुकेन सा ॥१९॥
 नार्पितानि कति मण्डलानि ते दन्तिनो मदमुखास्तवाधिकाः ।
 राजशब्दमपहाय का तव न्यूनता भजसि दुर्नयं यतः ॥२०॥
 घोरमापतितमेतदाः कुतः किं करोमि कतरा प्रतिक्रिया ।
 हे चुलुक्य कुलदेवता स्वयं वार्यतामनुचितान्ममानुजः २१
 एवमादि विनिवेद्य पार्थिवस्तत्र सान्त्वनशतानि सूत्रयन् ।
 तं शशाक न निषेद्धुमक्रमाद्भंगमेति भवितव्यता कुतः २२
 प्रापदत्र समये सुधाकरश्रीप्रसादनविशारदा शरत् ।
 नीलनीरदकलङ्कितं क्रमाद् दुग्धधौतमिव कुर्वती जगत् ॥२३॥
 वैद्यु ते शिखिनि पान्थसुन्दरी तापकारिणि गते परित्यजम् ।
 मानिनीनिवहवाष्पहेतुभिः शान्तमम्बुधरधूमसंचयैः ॥२४॥
 शान्तवैद्यु तकृशानुजन्मना भस्मनामिव रजोभराङ्घ्रिताः ।
 पाण्डुराः कतिपये नभस्तले क्वापि सख्यमभजन्त वारिदाः २५
 इन्द्रनीलरसकूर्चिकाचयैः संग्रसृष्टमिव नीलिमास्पदम् ।
 सिरसमल्लुङ्गकैर्नभस्तले जलशालमिव व्यपगतम् ॥२६॥

खेदकारणभवान्तरापगासंगमं गतमवेत्य वारिधेः ।
 सम्मदादिव महातरंगिणी चक्रवालमगमत् प्रसन्नताम् ॥२९॥
 उत्कटेन तडितामिषोष्मया संनिरुध्य जलदेन तापितः ।
 अंशुभिः खरतरैरदर्शयत्तापमप्यधिकमुष्णदीधितिः ॥२८॥
 पक्षशालिवनमध्यतः करैः पाटलैः कलमगोपिकाजनः ।
 नूतनोद्गतसरोजसं गतानास्त वारयितुमक्षमः शुक्रान् ॥२९॥
 निर्गतैरिव तडित्प्रदीपतः सान्द्रकज्जलरजोभिराक्षितम् ।
 वृत्तकर्परनिभं नभस्तलं नीलिमानमतिमान्नाययौ ॥३०॥
 सार्धमम्बुभिरिवेत्य वारिधेर्मौक्तिकानि गलितानि तोयदात् ।
 व्योममण्डलमुडूनि भेजिरे कैरवाधिकरुचीनि रात्रिषु ॥३१॥
 नीलनीरदभिचोलकोज्जिते व्योमदर्पणतले शरद्वधूः ।
 चन्द्रमाननमिवावलीकयत्तस्मिन्निमित्तकैरवेक्षणा ॥३२॥
 आतपः कलममदत्त वासरे चन्द्रिका जनमनन्दयन्निशि ।
 चक्रतुर्निजगुणप्रकाशनं स्वर्धमेव तपनक्षपाकरौ ॥३३॥
 सान्द्रचन्दनविलेपनादपि क्लान्तिहारिषु गृहाद्गणस्थितः ।
 तं प्रदोषसमये मरीचिषु प्राप तृप्तिममृतद्युतेर्जनः ॥३४॥
 पुण्ड्रकेक्षुलतिकाश्चकाशिरे क्षेत्रभूमिषु कृतेक्षणेत्सवाः ।
 लम्बिता इव विधोः सुधाभरादंशवः स्फटिकदण्डपारदुराः ३५
 शक्रकार्मुकविलोकनाद्भुवं मन्दितं नयवशात् कलापिभिः ।
 यत्र यद्गतवति क्षणेन ते मौनमानतमुखाः सिधेविरे ॥३६॥
 क्षुरणमौक्तिकपरागपारदुरः शोभतेस्म दिवि चन्द्रिकाभरः ।
 मेघबन्धनविमुक्तमीक्षितं क्षीरनीरधिरिवेन्दुमागतः ॥३७॥
 जाड्यमम्भसि निमज्जनाच्चिरं यत्पदं कमलिनीषु निर्मले ।
 तन्निराकरणकारणादिव व्यातनोदधिकसातपं रविः ॥३८॥
 हंसपंक्तिरवधीर्य मानसं क्रौञ्चशैलविवरेण निर्गता ।
 भागवस्य दृढलक्ष्मदेतः प्रदयतेस्म यशसापिषावलिः ॥३९॥

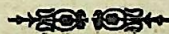
व्याकुलेषु पतिषु प्रतिक्षणं लब्धवत्सलभसमागमोत्सवाः ।
 तत्र कुङ्कुमविकासवासराङ्गान्मुलाः सुखमयानमन्वत ॥४०॥
 न त्वमिन्द्रधनुषः शरस्यतां धारयन्नपि कुरंगमागतः ।
 न द्रुतोसि तडिदूष्मणा च यत्तत्तुषारकरकौतुकं महत् ॥४१॥
 मेघकर्दमनिपातपङ्क्तिरा ज्वालित कथय केन चन्द्रिका ।
 कः कठोरहृदयो वियोगितां नो विभेति बधपातकादपि ॥४२॥
 किं प्रमाद्यसि न सर्वदासुखं कस्यचित् प्रकृतिभङ्गुराः श्रियः ।
 राहुरामलकवन्मुखोदरे त्वां दिनैः कतिपयैः करिष्यति ॥४३॥
 सर्वदेव हृदयं मलीमसं न क्षणं स्पृशति ते प्रसन्नताम् ।
 तत्क्षलत्वमखिलोपतापिनः पुष्पकार्मुकनृपस्य वत्सलभः ॥४४॥
 इत्यनङ्गशरसङ्गदीपितप्राणनाथविरहाः क्षपामुखे ।
 चन्द्रिकाश्नपितविश्वमालपन् यानिनीदयितमेणलोचनाः ४५
 इन्दुदीधितिषु शारदीष्वसौ मन्मथस्य करदीपिकास्त्रिव ।
 दुश्चरित्रमनुजस्य चिन्तयन्न प्रसादमभजन्नराधिपः ॥४६॥
 तस्य सन्ततमकीर्तिवार्त्तया मानसे कलुषतां समुद्बहन् ।
 न प्रसादितमृगाङ्गुयाप्यसौ नीयतेस्म शरदा प्रसन्नताम् ॥४७॥
 कुन्तलेन्दुरभवत् कृपावशात्तत्र राज्यमपि दातुमुत्सुकः ।
 कः प्रसन्नमनसां यशोर्थिनां श्रीसमर्पणविधौ परिश्रमः ॥४८॥
 ग्रहिणोत्कति न सांत्वनकमांस्तत्समीपमनिशं विशांपतिः ।
 एकमप्यनयवायुलङ्घितो जाग्रहीष्ट कुलकण्टकस्तु सः ॥४९॥
 वैशसस्य कथमस्य शान्तिरित्येव यावदनुकम्पया स्थितः ।
 तावदद्भुतभुजाधलेपतः कृष्णवेणितटमाजगाम सः ॥५०॥
 भूपसेनमपहाय तच्चभूमाश्रिताः कति न मण्डलेश्वराः ।
 जायते सतिविपर्ययो नृणां प्रायशः परिभवे भविष्यति ॥५१॥
 वीक्ष्य स द्विपगटाः कटस्थलीनिर्लुठद्बहलदाननिर्भराः ।
 वाजिनश्च-
 ॥५२॥

तच्चमूपरिकरेण पीडिता कृष्णवेणिरधिगम्य तानवम् ।
 सिन्धुगार्श्वमिव गन्तुमक्षमा रोषतः कलुषतामदर्शयत् ॥५३॥
 कापि दाहमपरत्र लुण्ठनं बंधनं क्वचिददाज्जनस्य सः ।
 पातचिह्नमिव तस्य भूयसी दुष्टचेष्टितपरम्परामभवत् ॥५४॥
 तस्य दुर्नयपरम्परामसौ चक्षमे चिरतरं क्षमापतिः ।
 तादृशैरमलसत्त्वाशिभिः स्पर्धितुं जलधयोपि नेश्वराः ॥५५॥
 दुर्वचांसि सविधे घरापतेः स व्यसर्जयदनकुशानिशम् ।
 अश्रिया जडधियः कटाक्षिताः किं तदस्ति न समाचरन्ति यत् ५६
 ब्रूमहे किमधिकं तथा मुहुस्तत्र सस्तवमवाप चापलम् ।
 तं प्रति प्रवर्ततिश्च विस्मितः सत्त्वरं वञ्चमतीपतिर्यथा ॥५७॥
 पूरितः प्रतिरवेण दिग्गजश्रोत्रशंखकुहरप्रसर्पिता ।
 दुन्दुभिध्वनिरभूदयं ततस्तस्य सङ्गलनिनादनिर्भरः ॥५८॥
 न क्षितीन्द्रपटहस्वनोभवद्विक्रिश्रवणपाटने पटुः ।
 यत् सुदीर्घकररन्ध्रपूरणादलयाः प्रथममासस्ताद सः ॥५९॥
 भूपतेः समभरेण दन्तिनां दूरमानमति भूमिमण्डले ।
 नूनमम्बुदनिनादमेदुरः प्राप दुन्दुभिरवश्विरान्नभः ॥६०॥
 पन्नगेश्वरफणासु तद्वलक्षुण्णरेणुतलिनापि सर्वतः ।
 आर्द्रतां गजमदाभ्रुभिर्गता भूमिरित्यधिकमाप गौरवम् ॥६१॥
 अठिषु स्थलपथीकृतेषु नः पूर्यते जलविधौ कुतूहलम् ।
 इत्यकुर्वत दिगन्तगोचरं नूनमस्य तुरगाः क्षमारजः ॥६२॥
 पृष्ठनिर्लुठितभूमिरेणवस्तस्य वारणवरा विरेजिरे ।
 कापि भूमिमवतार्य तत्क्षणादागता इव समेत्य दिग्गजाः ॥६३॥
 पस्पृशुर्न पृथिवीं तुरंगमाः स्पर्धयेव दिननाथवाजिनाम् ।
 भोगिभर्तुरभवन् मतंगजस्थान एव नितरां परिश्रमः ॥६४॥
 उन्मदद्विरदहस्तशीकरश्रेणिभिर्नभसि तस्य दर्शिताः ।
 रेणुहारितमश्रस्य भास्वत्प्रहृष्टिना ह्रस्व रम्येन तारकाः ॥६५॥

उन्नतद्विपवटासमीपगः शोभतेस्मभगवान्दिवाकरः ।
 उन्नमद्द्विरदसङ्गजां भियं त्याजयन्निजतुरंगमानिव ॥६६॥
 रेजिरे करटिपृष्ठसंगताः स्वर्णरत्नमयसारिसंपदः ।
 भूमिरेणुभरतो नभस्तलादानता इव विमान पंक्तयः ॥६७॥
 भास्वतः करिभयावगाहनाद्वाहनैरिव निपातितोरुणः ।
 कुम्भिकुम्भतटचीनपिष्टतः प्राप रेणुविसरः क्षमातलम् ॥६८॥
 कोपतः प्रचलितोपि भूपतिः सांत्वनाय हृदि सत्त्वरोभवत् ।
 वेश्रपत्न्यकरणं श्रियः कृते तेन्य एव कुलपांसनाः नृपाः ॥६९॥
 अन्तिकीभवति निन्नगातटे तत्रतत्र परिपंथिनो भटाः ।
 एतय युद्धकरणेन कुन्जलक्ष्मापतेः क्रुधमदीपयन् पथि ॥७०॥
 श्रीचालुक्यधुरंधरोथ रुधिरस्रोतस्त्रिनीगाहन-
 क्रीडाकांक्षिणि कुन्जरे कृतपदस्तं देशमाक्रान्तवान् ।
 यत्रानेन करिष्यते प्रतिपथव्यावर्तिताम्भोभर-
 आम्पद्दीरकरंकसंकटतटा सा कृष्णवेणीसरित् ॥७१॥
 अवनितिलकस्तत्रावासं विधाय सरित्तटे
 घटयितुमिमं साम्नेवाभूदुपायपरायणः ।
 कुटिलहृदयः सन्नोतस्मान्न सांत्वनमग्रही-
 द्भवति हि मतिर्भाग्यभ्रंशे नितांतमनंकुशा ॥७२॥

इति श्री विक्रमांकचरिते महाकाव्ये त्रिभुवनमल्लदेवविद्यायति

काशमी (कभट्टबिल्हणविरचिते चतुर्दशः सर्गः ॥१४॥



भुजविक्रमदन्तिडिगिडमः समरोत्साहशिखरिडवारिदः ।

अथ कुन्तलभर्तुरध्वनद्विजयो द्योगविलासदुन्दुभिः ॥१॥

विजयोत्सुकवीरसुन्दरीकृतनिष्कम्पचतुष्कमण्डलाः ।

नरनाथपथावलोकनप्रगुणत्वं सुभटाः सिधेविरे ॥२॥

रणदुन्दुभिमेघनिस्वनैः सुभटश्रेणिविहूरभूमयः ।

अभवन्निस्तृतासिवलरीनवरतनाङ्कुरकोटिदन्तुराः ॥३॥

रणसंभ्रमलोलभङ्गिषु न्यततन्त्रदुरागनिर्भराः ।

कवरीषु कुरङ्गचक्षुषामखिलेखासु च वीरदूष्टयः ॥४॥

अधिरोपितसारिपञ्जरस्थितिदर्पाद्दधुरयोधनण्डलाः ।

अभजन्त गजाः स्थितिं बहिर्मणिसंनाहनिवेशपेशलाः ॥५॥

सुभटः प्रमदाकरार्पितं दलयन्नागरखण्डवीटिकासु ।

रिपुदन्तिघटासु खण्डनं तृणमुत्साहवशादमन्यत ॥६॥

रिपुराजशिरःसु श्वेतरस्थितरतनाङ्कुर करटकालिषु ।

भ्रमणक्षमतां दधुः खुरास्तुरगाणां कृतलोहबन्धनाः ॥७॥

रणलम्पटमत्तकुञ्जरं स्फुरदस्त्रीयसहस्रसंकुलम् ।

तदनेकभटोद्भटं बलं क्षुभितस्याप लिपिं पयोनिधेः ॥८॥

करिणः करशीकरोत्करैः प्रहितैः क्षमापतिमन्दिरोदरे ।

सिबिचुः क्षितिपथ्य हृद्गतां विजयाशां कुसुमावलीमिव ॥९॥

दृशमभ्युत्तहामिव स्रजं विजयश्रीपरिरम्भशंसिने ।

स्फुरणप्रवणाय बाहवे बहुमानेन समर्पयन्नुपः ॥१०॥

पुलकाङ्कुरकण्टकोत्करानतिरागादविजानतीमिव ।

वपुषा सुभटश्रियं दधन्निविडालिङ्गनगाढकौतुकम् ॥११॥

हसितेन विनिःसरन्मुखस्थितकर्पूरपरागपाण्डुना ।

घटयन्प्रतिराजपङ्कजग्लपनार्थं लुहिनच्छटामिव ॥१२॥

वलयोदररत्नदर्पणप्रतिबिम्बच्छलतो निजाकृतेः ।

हरिणेषु विपक्षसंशयव्रतभाजिनुजयोरधिष्ठितः ॥१३॥

घनचन्दनलेपपाण्डुना वपुषा पोषितलोचनोत्सवः ।
 परितः स्फटिकक्षमाभृता दधता कङ्कटतामिवाश्रितः ॥१४॥
 धृतमङ्गलमौक्तिकान्तः क्षणदानाय इवामलद्युतिः ।
 मदवारणमन्थरैः पदैरथ निष्क्रम्य चतुष्कवेश्मनः ॥१५॥
 त्वरयाधिरुहो हन्तिनः कृतपूजस्य स पृष्ठमादरात् ।
 सह मङ्गलतूर्यनिःस्वनैरुदयाद्रेरिव शङ्गमयसा ॥ १६॥
 क्षितिपेन करी विभूषितस्तरुणीनेत्रसहस्रसङ्गिना ।
 हसतिस्म सुरेन्द्रहन्तिनः श्रियमारूढपुरंदरस्य सः ॥१७॥
 महति क्षितिभर्तुराहवे निकटस्थे कुविकल्पदोलिताम् ।
 अकरोज्जयकुञ्जरः स्थितिं स करास्फालनतः स्थिरामिव ॥१८॥
 नलिनीदलचारुकान्तिभिः पदचिन्हैर्मदवारिपूरितैः ।
 सरसीमिव तापशान्तये रचयामास स पार्थिवश्रियः ॥१९॥
 मदपानबहुप्रलापिनां भ्रमणानां करविभ्रमैरभूत् ।
 रिपुवारणद्विगुणध्वनिश्रवणायैव निवारणोन्मुखः ॥२०॥
 अथ वीररसावतारतस्तरसा पल्लवितेन चेतसा ।
 जगद्भुतभूरिसाहसः प्रहसन्नुच्चलतिस्म पार्थिवः ॥२१॥
 समराङ्गस्य संगतिं भजन्विजयश्रीपरिरम्भणोत्सुकः ।
 स बभार विलाससद्मानि प्रशयिन्याः प्रविशन्निवोत्सवम् ॥२२॥
 कियतीमपि तीव्रविक्रमः समतिक्रम्य वसुन्धरां ततः ।
 अवलोकयतिस्म भूपतिः प्रसरत्तूर्यरवं द्विषद्वलम् ॥२३॥
 मदवारिसमुत्थशैवलद्युतिरोलम्बकलापजन्मनाम् ।
 अददुर्दशनां शुचिन्द्रिकां तिमिराणामिव वारणाय ये ॥ २४ ॥
 निजदानजलोत्थकर्दमस्खलनस्ततयेव ये पथि ।
 पदविन्यसनं दधुः क्रमान्सदनिद्रार्थनिमीलितेक्षणः ॥२५॥
 सरसीसलिलावगाहनग्रहिलाः स्वैरविहारकेलिषु ।
 दलितादरविन्दमण्डलादधिरूढामिव ये दधुः श्रियम् ॥२६॥

दधुरद्रिविघटनेषु ये पतितैर्मूर्धनि निर्भरैरिव ।
 कलयन्तमतिप्रभूततां क्षतधाराजलदार्दनं मदम् ॥२७॥
 श्रुतिभूषणशङ्खशुक्तिभिः शशिसुग्धाभिरधारयन्त ये ।
 मदनिर्भरिणीतटस्थलीं कलहंसीभिरुपासितामिव ॥२८॥
 ननु कस्य निवेश्यतामिदं शिरसि प्राज्यभुजस्य भूभुजः ।
 पदमेकमधारयन्निति ध्रुवमुच्चैस्त्रिपदीनिभेन ये ॥२९॥
 कृतसन्नहनास्तथाविधाः करिणो यत्र सहस्रशः स्थिताः ।
 मदलुब्धमधुव्रतस्वनैरगमन् यामिकतामिव श्रियः ॥३०॥
 जलराशिनिवेशसंकटा ज्वरोधाय बभूव भूरियम् ।
 कविकां दशनैरखण्डयन्निति कोपादिव ये मुहुर्मुहुः ॥३१॥
 अवलम्बविडम्बनामिमां तरणेर्हन्त हया हसन्ति नः ।
 वसुधामिति मत्सरादिव क्षपयन्तिस्म परिक्रमेषु ये ॥३२॥
 अवलोक्य रवेस्तुरंगमान्नववैदूर्यनिभे नभस्तले ।
 हरितासु तृणस्थलीषु ये विहरन्तिस्म विषद्भ्रमादिव ॥३३॥
 वदनस्थितकेन मण्डलच्छलतो दुग्धपयोधिनेव ये ।
 निजसूनुतुरङ्गशङ्कया परितोषादुपहत्य चुम्बिताः ॥३४॥
 सुरघटितवैरिकुट्टिमस्फुटितैर्वह्निकणैः कदर्थिताः ।
 न निचर्षमकार्षु रङ्घ्रिभिश्चतुलैर्यत् कचिदेव वर्तमनि ॥३५॥
 निकटस्थितमेघडम्बरैः सुरचापैरिव तैस्तुरंगमैः ।
 यदुदञ्चयतिस्म साध्वसं जगतां वज्रनिपातनिष्ठुरैः ॥३६॥
 हृदयस्थितरत्नभूषणप्रतिबिम्बच्छलतः शिरांसि यैः ।
 विधृतानि निजानि लीलया मरणे निर्गहनैरिवोरसि ॥३७॥
 सहजोष्मविशोषजर्जरं हृदि येषां विरराज चन्दनम् ।
 समनीकशतप्रहारजं व्युत्तमस्थनामिव पाण्डुरं रजः ॥३८॥
 प्रबलेन भुजद्वयेन ये बहुशस्तीर्णं महाहवार्णवाः ।
 यशसः प्रणयित्वमागताः पृथुडिरडोरकलापपाण्डुराः ॥३९॥

समदप्रतिपक्षमर्दनाद् बहुशस्त्रव्रणगर्तशालिनी ।
 निखिलेपि यदङ्गविस्तरे विदधे वीररसः स्वमाश्रयम् ॥४०॥
 तिमिरैरिव पिण्डतां गतैर्द्वयैरिव घर्मवासरैः ।
 बहुभिः सुभटैस्तथाविधैर्यत्संभाव्यपरमभागमम् ॥४१॥
 परिभाव्य नितान्तभैरवं तदतिक्रान्तदिगन्तर बलम् ।
 कतरो न जगाम संधमं मुमुदे कुन्तलपार्थिवः परम् ॥४२॥
 विजयामृतकर्षणोद्यतैः सुभटैर्वीररसाम्बुधेस्ततः ।
 प्रलयप्रतिमं द्वयोर्दिशोः समुपाक्रंस्यत युद्धमुद्धतम् ॥४३॥
 अधिरुक्ष्य बलद्वये वलाङ्गुतदण्डैः परिदोलनोद्यते ।
 समरदुमतः फलावलिर्निपपातेव शिरःकदम्बकैः ॥४४॥
 सुभटस्य निहृत्य वलगतः समसेव प्रतिपक्षवीरतः ।
 अविशद् दृशि शोणितच्छा हृदये खङ्गगता च संमुखी ॥४५॥
 असिना विनिपत्य लीलतां गमिते मूर्धनि भङ्गशक्तितः ।
 मुदमाप जयामृताशया सुभटस्तत्र पृषत्ककीलिते ॥४६॥
 क्षतचञ्चुपुटा विघट्टनान्मुकुटे रत्नमये शकुन्तयः ।
 न सहर्षमकार्षुरर्थितां परमार्थामिषपिण्डकेवपि ॥४७॥
 अवलम्ब्य शनैरगाधतां रुधिरस्रोतसि मार्गरोधिनि ।
 न परस्परदर्शनेप्यभूत्सुभटानां क्षणमाहवोत्सवः ॥४८॥
 गुणवादपरायणा गिरः स्मितसन्दिग्धविरोधमीक्षितम् ।
 परुषत्वमुवास केवलं करवालेषु भुजोष्मशालिनाम् ॥४९॥
 पतितेषु शिरःसुमानिनामिदमासीदवमाननास्पदम् ।
 यदमीषु सरोषमाविशन्नुपरि न्यस्तपदाः पदालयः ॥५०॥
 शिरसा सुभटस्य दर्शितं शरलूनेन महत्कुतूहलम् ।
 च्युतमप्यवनौ हि विद्विषि प्रहितं लोचनमाचकर्ष यत् ॥५१॥
 असिघट्टनतः परस्परं पतिता वह्निकणा रणाङ्गणे ।
 अलभन्त विश्वाचयोषितां प्रियतामामिषपाककर्मणि ॥५२॥

गलितद्विपकुम्भमौक्तिकच्छलतो व्योमनिभास्त्रिमण्डली ।
 विनिमीलिततारकावदज्जयतिग्मांशुमिवोदयोन्मुखम् ॥५३॥
 हृदयस्थितबाणमूर्धया करिकुम्भस्थलपीठशायिनाम् ।
 अभवन्नुपकारहेतवश्चलकर्णव्यजनानिलोर्मयः ॥५४॥
 विरराज नमन्महाकरी भटवक्षःस्थलभेदलम्पटः ।
 अवनम्य रणाङ्गणस्थितां जयलक्ष्मीमधिरोपयन्निव ॥५५॥
 अभवद्वलमेतदन्तरे सकलं कुन्तलचक्रवर्तिनः ।
 प्रतिपक्षगजप्रधावनक्षुभितं दिक्षु विलक्षमास्तृतम् ॥५६॥
 न स कोपि महोद्गुरः करी न तुरङ्गो न पटुर्महाभटः ।
 विचचार न यः पराङ्मुखः प्रतिपक्षप्रलयानिलाहतः ॥५७॥
 पुलकप्रणयं कपोलयोरथ चालुक्यनृपः प्रकाशयन् ।
 उदतिष्ठदपारपौरुषः स्वयमुद्गममदेन दन्तिना ॥५८॥
 दलयन् रिपुकीर्तिकन्दलीं रणलीलासरसीमृणालिकाम् ।
 करिमेघघटाश्च पाटयन्नतनोदद्भुतराजहंसताम् ॥५९॥
 क्षतकुञ्जरकुम्भमौक्तिकैर्निपतद्भिर्मुकुलानुकारिभिः ।
 रिपुवीरयशःक्षमारुहं स भुजाभ्यां निजगाद कम्पितम् ॥६०॥
 रिपुवारणकुम्भमण्डलीं प्रहरन्निर्गहनः क्षमापतिः ।
 प्रमदाघनपीवरस्तनस्मरणस्मेरमुखो बभूव सः ॥६१॥
 निपतन्तमसौ निवारयन्नरिनाराचमिभक्ष्य मूर्धनि ।
 चरणेन निहत्य पृष्ठतः सुरपुष्पप्रकरैरपूर्यत ॥६२॥
 करटिध्वजदण्डसङ्गिनीं प्रतिवोरप्रहितां शरावलिम् ।
 जयकोलकमालिकामिव क्षितिपालः सविलासमैक्षत ॥६३॥
 असिना विशिखैः सतोमरैः सहसा कुञ्जरधावनेन च ।
 स सहस्रसमिवोद्ग्रहन्करान्प्रतिपक्षक्षयदीक्षितोभवत् ॥६४॥
 तमवेक्ष्य तुरंगवाहिनीहठनिर्लोठनबद्धकौतुकम् ।
 तुरगावलिरंशुमालिनः कलयामास गुणाय दूरताम् ॥६५॥

असिधेनुविलूनकन्धरैः समदाधोरणमस्तकैरसौ ।
 पृथिवीन्दुरपूरयन्महीं युगपद्द्यां च यशोभिरुद्धतैः ॥६६॥
 अपि शैलविटङ्कभेदिभिर्विशिखैस्तस्य निवेशितव्यथाः ।
 द्विषतां करिणः पलायिताः शरणं दिग्द्विरदानिवागमन् ॥६७॥
 प्रतिवीरजिमुक्तमार्गणप्रचयाघटितकङ्कटोत्थितैः ।
 शिखिभिः स लहूनकरूपयत्समराम्भोनिधिवाडवानिव ॥६८॥
 रणसीमनि तेन वैरिणो विजयश्रीविरहाद्विवादिनः ।
 गजमौक्तिकरेणुपाण्डुराः समनीयन्त तपस्वितामिव ॥६९॥
 करिपादविपाटितोद्धटप्रतिभूपालकपालकर्परः ।
 भुवनत्रयभाण्डपूरणक्षमकीर्तिः समरे चचार सः ॥७०॥
 न स कोपि कठोरपाटवः प्रतिभूभृत्कटके भटोभवत् ।
 शरवर्षकृताभिभाषिणः क्षणस्याभिमुखो बभूव यः ॥७१॥
 क्षणमात्रविसृजिताखिलप्रतिपक्षस्य चुलुक्यभूपतेः ।
 वपुषि त्रिदिवौकसां परं सह पुष्पैरपतन्त्रिलीमुखाः ॥७२॥
 यदनेकपताकिनीभटक्षयमेकः समनीकसूर्धनि ।
 स चकार चुलुक्यपार्थिवस्तदभूत्कस्य न वर्णनास्पदम् ॥७३॥
 चकितेव कबन्धताण्डवैः समरप्राङ्गणरङ्गभूमिषु ।
 परिदृष्टपराक्रमं भुजं विजयश्रीः क्षितिभर्तुराश्रिता ॥७४॥
 कवचे परितः कृतस्थितीन्भुजयोर्व्याप्तिविवन्धकारिणः ।
 कमलप्रतिमेन पाणिना विशिखान्सस्मितमुच्चखान सः ॥७५॥
 स बभार शिरस्त्रमण्डलस्थितनाराचसहस्रभारतः ।
 प्रणमन्निव सङ्गरश्रियं क्षणसूध्वानतकन्धरं शिरः ॥७६॥
 रिपुशोणितबिन्दुमुद्रितौ स बिभर्तिस्म भुजौ महामुजः ।
 क्षपितप्रतिपक्षशेखरच्युतरक्ताङ्कुरदन्तुराविव ॥७७॥
 रणसीमनि तत्र तत्र ये विशिखैः क्षमातिलकस्य कीलिताः ।
 अपतन्त्रपिपायसं न ले करिणं क्षुम्भतदीप्तिविव ॥७८॥

अयि नाथ विमुञ्च कैतवं किमु मूर्खोमिषमीलिते दृशौ ।
 न तवायमुपेक्षितं क्षणः सुभटस्वामिचमूपराभवम् ॥७९॥
 उरुषाः सुरधाम्नि दुर्लभास्तदिहायान्ति निलिम्पपांसुलाः ।
 अलमेतदुपाधिनामुना मयि कामिन्नवधीरणेन ते ॥८०॥
 विदितं यदयं विगाहसे सुभटश्वाससमीरणोपनम् ।
 सुरवारपुरन्धिचुम्बनादिह ते नूतनमस्ति सौरभम् ॥८१॥
 मम भाग्यविपर्ययादिदं त्वमपर्यन्तमधैर्यमाश्रितः ।
 अहहाभिसरन्ति संपदश्चपलाः स्वामिगृहादनङ्कुशाः ॥८२॥
 चलितोसि सुराङ्गनागृहं मम सौभाग्यविपर्ययाद्यदि ।
 किमु विस्मरसि स्मरातुर प्रभुसंमानमिहान्यदुर्लभम् ॥८३॥
 इति वीरविलासिनीजनस्फुरदाक्रन्दसहस्रदुर्दिनाम् ।
 रणभूमिमसौ विलोकयन्नरिपृष्ठग्रहणान् न्यवर्तत ॥८४॥
 तदनु नृपतिः प्राप्तः पारं परं समराम्बुधेः
 सरलितधनुः श्रुत्वा शत्रोः पलायनमाकुलम् ।
 अहह कृपणस्त्यक्तः कीर्त्याप्यसाविति विव्यथे
 प्रकृतिमहंतां दुर्वृत्तेष्वप्यहो चटुलाः क्रुधः ॥८५॥
 करितुरगसमृद्धां सार्धमन्तः पुरेण
 क्षितिपतिरथ सर्वं शत्रुजह्मीं गृहीत्वा ।
 ललितगतिकरेणुन्यस्तहेमासनस्थः
 प्रवरजयपताकां राजधानीं विवेश ॥८६॥
 संप्राप्तं कुलकरटकं तमटवीमध्यादवन्ध्यैर्भटैः
 कारुण्योद्गतवाष्पगद्गदवचाः संभाष्य संतोष्य च
 चालुक्यान्वयशेखरीं शिखरप्रेङ्खलीमुक्ताफल-
 प्रालम्बदुतिपुञ्जनिर्गलितशोभुच्छामगच्छत्पुरीम् ॥ ८७॥
 इति श्रीविक्रमाङ्कदेवचरिते महाकाव्ये त्रिभुवनमल्लदेवविद्यापति-
 .CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. An eGangotri Initiative
 काश्मीरकनैट्श्रीविलहणविरचिते पञ्चदशः सर्गः ॥ १५ ॥

कुङ्कुमस्मित सङ्कोची कौञ्चीमदनदेशकः ।

भिन्नमुत्तरवायूनां वियक्षावण्यतस्करः ॥१॥

शरत्कालात्पक्वान्तकान्तवर्त्तन्द्गुवल्लभः ।

अथाजनाम हेमन्तः सोमन्तः स्मरभूपतेः ॥२॥

शरद्वितीयां सौभाग्यभङ्गदक्षः क्षमापतेः ।

कान्तामुखानां हेमन्तः सेवकत्वमशिक्षत ॥३॥

अजायन्त विभावर्यस्तपने मन्दतेजसि ।

दिवसग्रस्तविस्तारकर्षणाय कृतक्षणाः ॥४॥

दोलयन्तः कपोलेषुः कस्तूरीपत्रबन्धुषु ।

अलकानलकास्त्रीणां ववुः कैलासवायवः ॥५॥

रतिकोपे प्रसादे च दधानाः परिपूर्णताम् ।

आयामवत्यो यामिन्यः कामिनीनां मुदेऽभवन् ॥६॥

प्रौढत्व माचरन्तीभिर्नीत्वा संकोचपात्रताम् ।

अक्रियन्तः त्रियामाभिः स्त्रीजिता इव वासराः॥७॥

अलभन्त नभःक्षेत्रे तारास्तरलकान्तयः ।

त्वेषं तुषारबीजानां नूतनाङ्कुरशालिनाम् ॥८॥

सशङ्केनेव कन्दर्पदपौष्मपरिचिन्तनात् ।

शीतेन मदिराक्षीणां नास्पृश्यत कुचस्थली ॥९॥

अभूवन्नद्धतोष्माणः शीतव्याप्ते जगत्रये ।

कचोत्सङ्गाः कशाङ्गीणां स्थानं मन्मथतेजसः ॥१०॥

यामिनीभिरनीयन्त सततं कामिनीजनाः ।

अनङ्गसङ्गतैरङ्गैर्गालङ्घिनकौतुकम् ॥११॥

अक्षिप्यन्त तपाराद्विवायुस्फुटनशङ्कया ।

कान्ताभिः कङ्कमालेपनिचुलेषु सुखेन्दुवः १२

प्रण्डे क्षपाकपूतानि क्षेत्राणि दधिमांसलम् ।

आसीत्कडकमचर्चा च हन्त हेमन्तजीवितम् ॥१३॥

सदैरिणः कठोरांशोरियं प्रणयभूरिति ।
 रोषादिव तुषारेण निरदह्यत पद्मिनी ॥१४॥
 समक्षमपि सूर्यस्य पर्यभूयत पद्मिनी ।
 तेजस्विनोपि कुर्वन्ति किं कालवशमागताः ॥१५॥
 अङ्गेषु स्पर्शसौभाग्यमपि सामान्ययोषिताम् ।
 परिपोषितकन्दर्पस्ततान तुहिनागमः ॥१६॥
 विहारयोगेषु दिनेषु तेषु देवश्चुलुक्यान्वय चक्रवर्ती ।
 मृगेन्द्रगामी मृगयां विधातुं स निर्जगाम स्वभुजार्जितश्रीः ॥१७॥
 स वारवाणेन रणैकवीरः श्रियं दधे नीरदमेचकेन ।
 आमुक्तनीलोत्पलकङ्कटस्य देवस्य चूताङ्कुरकार्मुकस्य ॥१८॥
 स कञ्चुकस्योपरि नीलभासः स्थितेन हाटेण रराज राजा ।
 समेधनक्षत्रगणोवतीर्णं विद्याधरः कश्चिदिवास्वराग्रात् ॥१९॥
 सहागतान्तः पुरसुन्दरीभिरुदारहारप्रतिबिम्बिताभिः ।
 वक्षःस्थले तस्य कलत्रमाद्यं रराज लक्ष्मीः सपरिच्छदेव ॥२०॥
 बभार हारावलिमौक्तिकानि वक्षःस्थलेन स्फटिकोज्ज्वलेन ।
 उच्चैःस्थितस्य प्रतिबिम्बितानि सकुड्मलानीव यशोदुमस्य ॥२१॥
 नेत्राभिरामं दधता प्रपञ्चं नीलातपत्रेण स राजतेस्म ।
 खण्डेन लक्ष्मीकुलमन्दिराणां नीलोत्पलानामिव राजहंसः ॥२२॥
 द्वयोर्दिशोः केनविपाण्डुराभ्यां स चामराभ्यां पृथिवीतलेन्द्रः ।
 प्रसाधिताशेषदिगन्तरस्य रेजे यशोभ्यामिव दीर्युगस्य ॥२३॥
 व्योमाङ्गणस्थेन रराज वाजी भस्पासु तस्याग्रखुरद्वयेन ।
 समुद्यतो मूर्धनि ताडनाय रोषादिवोष्णांशुतुरङ्गमाणाम् ॥२४॥
 तेजोनिधेस्तस्य तुरंगमोसौ देहेन डिण्डीरविपाण्डुरेण ।
 घर्मेण दग्धानिव नीलदेहान्सहस्ररश्मेस्तुरगाञ्जहास ॥२५॥
 तेजोविशेषात्परितोषितानां प्राप्येव वेगं मनसां सकाशात् ।
 वाजी स राजीवमुखस्य तस्य विवेद नायोऽपि प्रहृष्टभावम् ॥२६॥

पर्याणमाणिक्यरुचां चयेन हरिप्रभस्यास्य हरिश्चक्राशे ।
 आपूरिताङ्गः खुरखण्डितारिभूपालरत्नाङ्गणपांसुनेव ॥२७॥
 जनस्य चित्रोल्लिखिताश्ववारद्वुडासने तत्र निपत्य दृष्टिः ।
 भ्रान्ता तुरंगभ्रमिपृष्ठलग्ना अमादिवान्यत्र न गन्तुमैच्छत ॥२८॥
 संचारिणी मन्मथराजधानी लीलावनं विश्रमपत्तलवानाम् ।
 अन्तःपुरं तस्य जगाम पृष्ठे परा प्रतिष्ठा रसनायकस्य ॥२९॥
 वाराङ्गनास्तस्य तुरंगमेषु भूकामुंकारुढकटाक्षबाणः ।
 विरेजिरे दिग्विजयोद्यतस्य सेना इवानङ्गनराधिपस्य ॥३०॥
 पापद्विर्लीलासरस्वीमरालाः कृतान्तदूता मृगपोतकानाम् ।
 हिंसाकटान्ना इव चित्रवर्णाः श्वानः प्रसस्रुः पुरतस्तदीयाः ॥३१॥

त्रैलोक्यलङ्घनकुतूहलिना हयेन

देवः कियन्तमपि मार्गमसौ विलङ्घ्य ।

कर्णान्तसंघटितनेत्रपुटो ददर्श

व्यालोलमत्तहरिणानि वनान्तराणि ॥३२॥

सार्धं प्रियेण कियतापि परिग्रहेण

स प्राविशद्विशदकीर्तिकृतावतंसः ।

नीरन्ध्रनीलनिचुलप्रचुरच्छदालि-

प्रच्छादितार्ककिरणशुःगिरिस्थलीषु ॥३३॥

देवस्य विक्रमनिधेरथ सूकराणां

शैलानुकारिकरिणामिव चक्रवालम् ।

स्निह्यद्गूराहगृहिणीपरिचुम्ब्यमान-

मुस्तासुगंधिमुखबालकमाविरासीत् ॥३४॥

गत्वा पदानि कतिचित्पुरतः सगर्वं

पृष्ठस्थितान्प्रति मुहुः प्रतिपालयन्तम् ।

बाणेन तत्र करिपीवरदेहमेकं

कलान्तरे क्षितिपतिः क्षपयांचकार ॥३५॥

केचिन्निपेतुरवनौ सह मार्गणेन

मार्गं कियन्तमपि केपि गताः सशल्याः ।

चेरुः कठोरशरधोरणिपातभीत्या

शैलस्थलीषु विप्रमासु परे वराहाः ॥३६॥

विपर्ययं पूर्वकथाद्भुतस्य चालुक्यभूपालशरश्चकार ।

प्रपात यन्नष्टधृतिर्वराहस्तं विह्वलाङ्गं वसुधा बभार ॥३७॥

क्रोडः सक्रीडमेतेन तरौ नाराचकीलितः ।

लीलामालानबद्धस्य दध्रे मुखस्य दन्तिनः ॥३८॥

शवा निर्गतः कनकशृङ्खलया सहैव

कोपान्निरीक्ष्य विशतो गहने वराहान् ।

रुद्धस्तया विटपिकण्टककीलकेषु

साक्रन्दकण्ठकुहरो मुहुर्नृत्पफाल ॥३९॥

रुद्धं विलोक्य हरिणं हरिणी गतापि

व्यावृत्य बाणविषये नृपतेश्चचार ।

प्रायेण देहविरहादपि दुःखहोयं

सर्वाङ्गसंज्वरकरः डकृतचापदण्डे ॥४०॥

उड्डीय क्रेपि निविप्रियविप्रयोगः

चालुक्यभूभुजि गता गगनं कुरंगाः ।

सप्तर्षिमण्डलसमीपमिव प्रविश्य

निर्बाधमाश्रमसृगत्वमवाप्तुकामाः ॥४१॥

स्वयमस्य पयोदवारिधाराश्रममासाद्य पृषत्कधोरणीषु ।

शरगोचरमागतो मयूरच्छलितो दिव्यपयोदुराग्रहेण ॥४२॥

स चकार शिखरिडमण्डलानां नृपतिस्तत्र तथा यथा बभूव ।

पथिकप्रमदासु कोमलाक्षः कलकेकाविकलः पयोदकालः ॥४३॥

स्वेच्छाविहाररसिकस्य वनस्थलीषु

काकुत्स्थतः किमपि तस्य लघुत्वमासीत् ।

यस्माद्दशाननजयी रघुराजपुत्रः

पञ्चाननं तु निजघान चुलुक्यवीरः ॥४४॥

अपि शरधिविकृतैश्चिच्छिदे कङ्कपत्रै-

र्निकटमपि न रोहिद्वर्भिणीषक वालम् ।

स्मरणसरणिमार्गोद्गर्भभारालसानां

विलसितमवलानां यद्वलाद् भूमिभर्तुः ॥४५॥

किंवा बहुप्रलपितैरवराहयूथ-

मुत्सन्नकेसरिकदर्यितरङ्कुसार्थम् ।

कुर्वन्नरण्यमुपसृत्य निषेव्यतेस्म-

तत्रैव कुन्तलपतिः शिशिरश्रियापि ॥४६॥

यत्सुभ्रवां घुसृणलेप्रकवोष्णमङ्ग-

यद्यौवनोष्ममधुराणि कुचस्थलानि ।

कामस्य तत्सकलकार्मुकयामिकस्य

श्यामासु जीवितमजायत शैशिरीषु ॥४७॥

शुभ्रेषु राङ्कवपटेषु हसन्तिकासु

लीलाहसन्मलयजेन्धनपावकासु ।

कृष्णागरुज्वलनधूमशिखासु चासी-

त्त्रैलोक्यकार्मुकजयी मदनप्रतापः ॥४८॥

अङ्गारहासिषु विलासगृहोदरेषु

विस्तीर्णतूलपटकल्पितवेष्टनेषु ।

उष्णेषु च प्रणयिनीकुचमण्डलेषु

शान्तिं जगाम शिशिरस्य तुषारगर्वः ॥४९॥

गान्त्रेषु सौष्ठवकृता मृगयाश्रमेण

श्यामाभिरुक्लिखितमन्मथविस्तराभिः ।

आलिङ्गनैश्च सुदृशामनुरञ्जितोसौ

सर्ववर्गोन्नतिकं शिशिरं विवेद ॥५०॥

गौरीविभ्रमधूपधूमपटलश्यामायमानोदराः
 कण्ठक्षीदभयान्न ये कवलिताः श्रीकण्ठहारोरगेः ।
 स्फारोन्मीलितशारदागृहहृद्द्वारान्मुदा निर्गता-
 स्ते स्नाधामलभन्त कुन्तलपतेः कैलासरौद्रानिलाः ॥५१॥
 स्पृष्टाः स्तोत्रं वितस्तातटतुहिनकणैः पीडयन्तः पयोष्णीं
 चञ्चन्तश्चन्द्रभागलहरिषु यमुनावीचिमैत्रीपवित्राः ।
 धुन्वानाः सिद्धसिन्धोरुभयतटगतां देवदारुद्रुमालीं
 तस्य प्रोच्यै बभूवुस्तुहिनगिरितटीकेलिकाराः समीराः ॥५२॥
 इति नरपतिः सार्धं दारैरुदारविचेष्टितः
 शिशिरसमयस्नाध्यक्रीडासुखान्यनुभूय सः ।
 नगरमगमल्लीलागारग्रमेदमुपासितुं
 क्षणमपि कुतस्तादृक्षाणां विलासदरिद्रता ॥५३॥
 इति श्रीविक्रमाङ्कदेवचरिते महाकाव्ये त्रिभुवनमल्लदेवविद्यापति-
 काश्मीरकभट्टविल्हणविरचिते षोडशः सर्गः ॥१६॥

विधाय भूमेस्तलमस्तकैरटकं ववर्ष हेम्नां स सहर्गमर्थिनाम् ।
 अशुर्वतां सर्वजनार्तिखण्डनं वृथा तडित्पल्लवत्रञ्जलाः श्रियः ॥१॥
 चुलुक्यवंशे महतां महीभुजां महाभुजः शेषरतामसौ गतः ।
 न भानुषीमेव निराचकार यः प्रजासु दैवीमपि चिच्छिदे रुजसु २
 पयोभिरस्मान्परिपूरयन्ति ये पयोधयस्ते दधतेरुपवश्यताम् ।
 इतीव तत्सेवनवाञ्छया जलं यथोपयोगं मुमुचुः पयोमुचः ३
 अकालमृत्युर्न चचार कुत्रचित्क्वचिन्न दुर्मित्तमलद्वयत द्वितौ ।
 किमन्यदन्यायनिवर्हणो नृपः स राज्यमिद्ववाकुपतेरदर्शयत् ४
 न भानुरत्यर्थमतापयज्जनं ववुः समीराः असमात्रहारिणः ।
 फलानि भङ्क्वातिभरेण पादपान्भिभयेव पक्वान्यभजन्त पाण्डुताम्
 जनैरवज्ञातकपाटमुद्रणैः क्षपासु रक्षाविमुखैरसुप्यत ।
 करा विशन्तिस्म गवाक्षवर्त्मसु क्षमापतेश्चिद्रूपयैर्न तस्कराः ६
 दिशः कृताः संतततूर्यनिस्वनैरलक्ष्यदिक्कुञ्जरकरठगर्जिताः
 पुरे पुरे संततमुत्सवादभूद् ध्वजांशुकप्रावृतभास्करं नभः ॥७॥
 उदारशौर्यैकरसः क्षमापतिः स निर्विनोदः समरोत्सवं विना ।
 समापिताशेषमदान्धभूपयोरसेवकत्वं भुजयोरमन्यत ॥८॥
 क्रमादजायन्त निजाकृतेः समाः कुलप्रतिष्ठानिधयोस्य सूनवः
 अनन्यसाधारणपुण्यशालिनां फलन्त्ययत्नेन मनोरथदुमाः ९
 सुवर्णवातायनतुङ्गभूमिषु स्थिताः प्रसादं दधुरस्य नन्दनाः ।
 कुलाश्रपदाः स्वीयविमानशङ्कया प्रविश्य विद्याधरबालका इव १०
 अहं सदा प्राणसमं महीभुजामयं तु मां वेत्ति नृपस्त्वणोपमम् ।
 इतीव कर्णेषु सुवर्णमर्थिनां स्वखेदमाख्यातुमभूत्कृतास्यदम् ११
 नरेन्द्रचामीकरचारुभूषणप्रभावलीसंगमिङ्गलत्विवाम् ।
 इतस्ततः श्लोषभियेव दुर्मतिर्मु मोच सङ्गं ज्वलतामिवार्थिनाम् १२
 शिरःस्थदेवालयपातभीतितः प्रगल्भते खण्डयितुं न मामसम् ।
 इति ध्रुवं काञ्चनभूधरोभवन्महीभुजि त्यागिनि तत्र निर्भयः १३

इहागतः खण्डनमेव लप्स्यते पलायनार्थं कनकाद्रिरुच्यताम् ।
 इतीव देशान्तरगामिनामभून्नेन्द्रेहेम श्रुतिलग्नमर्थिनाम् ॥१४॥
 कृतो निवासः कमलाविलासिनः क्षमाभुजा तेन नितान्तमुन्नतः ।
 विभाति धर्मस्य समुद्रतो भुजः कलिच्छिदे क्षमावलयोदरादिव १५
 नभोज्ज्वाल्यापिनमुष्णदीधितेर्गुणद्वयं यं परिहृत्य गच्छतः ।
 न लङ्घनं शार्ङ्गभृतः कृतं भवेत्तुरङ्गमाला च न भङ्गमश्नुते १६
 अयं स कण्ठीरवतामुपागमद्विपाटनार्थं दनुजेन्द्रवत्तसः ।
 इतीव भीतः कमलापतेः स्थितिं न यत्र धत्ते कलिकालकुञ्जरः १७
 अवैमि नारायणाभिपङ्कजं न लभ्यते यत्र मधुव्रतोत्करैः ।
 दिवानिशं येन विनिःसरन्ति ते निभेन कालागुरुधूमसम्पदाम् १८
 यदीयशृङ्गेषु विभाति मौक्तिकप्रभाकरैः काञ्चनकुम्भमण्डली ।
 तृषा विनिक्षिप्य मुखं तुरंगमैः कृता खरांशोरिव फेनसङ्गिनी १९
 पुरन्ध्रनृत्येषु विनिर्यदंशुभिः प्रसर्पदानन्दजलैरिवेक्षणैः ।
 श्रियं सजीवा इव यत्र संततं वहन्ति रत्नोत्करशालभञ्जिकाः ॥२०॥
 वितानरत्नप्रतिबिम्बडम्बरैर्वहन्ति यत्प्राङ्गणसोमिन् लासिकाः ।
 अवाप्तविद्याधरराजसुन्दरीपदा इव व्योम्नि विहर्तुमुद्यताः ॥२१॥
 अकारयत्कारणमानुषः पुरस्तडागमेतस्य स रुद्धदिङ्मुखम् ।
 उपैति येनानुपमश्रिया तुलामसौ गतश्रीः कथमम्भसां निधिः ॥२२॥
 नभः स्रवन्त्या इव शेषवारिभिः परिच्युतैरच्युतपादपद्मतः ।
 प्रविश्य देवालयगर्भभागतैर्विपाण्डुभिर्यः सलिलैर्विशोभते ॥२३॥
 प्रदानलोभादिह भर्तुरस्य चेत्कदाचिदागच्छति कुम्भसंभवः ।
 क्षिन्वा तद्दर्पमितीव यस्तदत्रुटद्विटङ्कोर्मिरवेण गर्जति ॥२४॥
 किमादृतक्षारपयोधिसङ्गमा बिभर्षि भागीरथि दुर्भगाव्रतम्
 इतीव यः कर्षति हर्षगद्गदस्तरंगहस्तैर्नभसः सुरापगाम् ॥२५॥
 अवाप्तबन्धेन लघुत्वमब्धिना वितर्क्य पित्रा सुरराजकुञ्जरः
 प्रभूतमात्मानमनिन्दितात्मनो ब्रवीति यस्मादध्रुवमभ्रमोः पुरः ॥२६॥

निपीय यत्पाथसि नूनमम्बुदैरवापिते शुक्तिषु मौक्तिकश्रियम् ।
 पुराणमुक्तामणिभिर्न लप्स्यते कुचस्थलारोहणमेषचतुषाम् २९
 अपास्य पाथोधिमसं ख्य निम्नगामुखार्पणोच्छिष्टमरोचकादिव
 तपात्यये जह्नु रूपान्तशैलजाः कुमारतां यस्य सगर्वमापगाः २८
 निरन्तरं ब्रम्हपुरीभिरावृतं चकार तत्रैव पुरं स पार्थिवः ।
 विरञ्चिलोकात्सुरलोकतश्च यद्विभूष्य भागाविव कौतुकात्कृतम् ।
 क्षपासु यत्रैकमपास्य चुम्बति द्वितीयवातायनमङ्गनामुखे ।
 विशङ्कितः सौधविटङ्कलङ्घनात्प्रविश्य मध्यं ब्रजतीव चन्द्रमाः ३०
 यदीयसोपानपथाधिरोहणे नितम्बिनीनां विनिपातभीतितः ।
 मयूखदण्डैस्तपनीयनिर्मिताः करावलम्बं ददतीव भित्तयः ॥ ३१ ॥
 यदग्रवातायनशङ्खसद्वामामनीव तुङ्गत्वमवाप दूषणम् ।
 यदत्र चित्रस्थितकुञ्जरक्रुधा प्रधावनं शक्रगजस्य शङ्क्यते ॥ ३२ ॥
 स्थितासु यत्रोपरि भूमिकुट्टिमस्थलीषु तुङ्गासु निरन्तरासुच ।
 त्यजन्ति मार्गे तुरगाः कियत्यपि ध्रुवं निरालम्बगां तश्चमं रवेः ॥ ३३ ॥
 निशासु यत्र प्रतिबिम्बवर्त्मना समागतश्चारुदृशां निशोकरः ।
 विलासदोलायितकुण्डलाहतः कपोललावण्यजले निमज्जति ॥ ३४ ॥
 पिता हरिः श्रीर्जननी तयोरिदं पुरं ममैवेति विचिन्तनादिव ।
 अजस्रमन्यायसहस्रकारिणः स्मरस्य यत्रास्ति न कश्चिदङ्कुशः ॥ ३५ ॥
 ददौ स दानानि महान्ति षोडश प्रतोपशाली प्रतिपर्व पार्थिवः ।
 तदन्तिकाट्टानजलैः सकर्दमान्निपातभीत्येव कलिः पलायितः ॥ ३६ ॥
 अधत्त तुङ्गेषु सुवर्णराशिषु प्रदानशीलस्तृणबुद्धिमेव सः ॥
 बभूव लोभास्पदमस्य भूपतेर्यशः परं चन्दनपिण्डपाण्डुरम् ॥ ३७ ॥
 सुवर्णदानप्रवणेन शङ्कितः सुवर्णशैलः शिखरैः समुन्नतैः ।
 समस्पृशत्पादपिण्डशङ्कया विपाण्डुरत्वार्थमिवेन्दुमण्डलम् ॥ ३८ ॥
 रिपुं विजित्य द्विजकल्पशाखिना कृतेमुना हेमतुलाधिरोहणे ।
 गिरेरगस्त्यागमशङ्कया चिराद्बभूव तस्योन्नमने मनोरथः ॥ ३९ ॥

अथच्छत स्वच्छमतीव काञ्चनं विशङ्क्य यस्मात्कनकक्षमाधरः।
 अदर्शयत्कालिकयेव संगतिं स्वहेम्नि संक्रान्तिनिभान्नभञ्जितः॥४०॥
 प्रदानलीलारक्षिकः प्रतापवान्विधाय रिक्तानि कुलानि भूभुजाम्
 अपूरयत्सोर्धिगृहाणि हेमभिर्यशोभिराशावदनानि चोज्ज्वलैः॥४१॥
 कृतस्थितिर्मूर्धनि चक्रवर्तिनां स विश्वचक्रद्विविधानतत्परः ।
 उदारशीलः प्रतिकूलतामगादृरिद्रनिर्माणपरस्य वेधसः॥४२॥
 विपक्षदुर्भिक्षकदर्थितश्चिरं स शौर्यकरडूलभुजः क्षितेः पतिः ।
 निश्चम्य चोलं बलगर्वितं पुनर्जगाम काञ्चीं समनीकतृष्णया॥४३॥
 श्रियः समुत्थापनवार्धिमन्थनं कलिप्रियस्येक्षणापारणं मुनेः ।
 क्रयापणं निर्जरपणयोषितां क्रमेण तौ तत्र रणं वितेजसुः॥४४॥
 महाभटानां करवालयष्टयः समुच्छलद्बीररसोर्जिनिर्मलाः ।
 विजिर्गतदः कोशबिलोदरात्ततः कृतातपाशोरगसंनिभा वभुः॥४५॥
 परस्परं भत्सरतः प्रधाविताः प्रभूतसौभाग्यवशाज्जयश्रियः ।
 किमप्यखिद्यन्त बलद्वये भटाः पुरोगतैः शीघ्रतया शरैरपि ॥४६॥
 हृदि प्रविष्टं दशनं निजासिना निकृत्य कश्चित्करिणं न्यवारयत्
 चकार रन्ध्रे कृतकीलकार्पणः प्रतिक्रियां जीवविनिर्गमस्य च॥४७॥
 अतिष्ठदंसे सुभटस्य चञ्चलं शिरः क्षुरप्रेण यदर्धखण्डितम् ।
 तदेष वामेन विधृत्य पाणिना प्रधावितः कं न चकार वन्दितम्॥४८॥
 संकङ्कटः कश्चिदुरस्तटत्रुटत्पृषत्कनिष्ठ्य तहुताशनो भटः ।
 विवेद नो धूमलताभिश्चङ्कया मुखे कृपाणं रिपुणा निवेशितम् ॥४९॥
 रदाङ्कुरप्रोतमरातिदन्तिना मुखं दधानः पुलकोत्कराञ्जितम् ।
 पिबन्निवालदयत कोपि लीलया मृणालदण्डेन यशःसुधारसम्॥५०॥
 विपक्षशस्त्रक्षपणैः पुनः पुनः क्षताखिलग्रन्थि निजास्थिपञ्जरम् ।
 चकार चण्डद्वृत्तिमण्डलोदरे सुखप्रवेशार्थमिवापरो भटः ॥५१॥
 पदेपदे शोणितप्रङ्कपातिनी दिनेश्वरस्य प्रतिबिम्बमालिका ।
 अवापदापानकुतूहलागतक्षपाचरस्त्रीचषकोपमेयताम् ॥५२॥

लघु प्रहर्तुं प्रतिपक्षमक्षमः प्रविष्टनाराचचयातिभारतः॥
 भटेन केनापि सरोषमीक्षितः प्रभूतवैलक्ष्यवता निजो भुजः॥५३॥
 भटेन नीतः श्रुतिहस्तखण्डनान्महाकरी निग्रहलोचितं विधिम् ।
 ममज्ज लज्जामिव धारयन्भृशं कृशानुवर्णं रुधिरापगाभरे ॥५४॥
 रदद्वयेन स्फुटितेन पाटनात्परिस्फुटदन्तचतुष्टयद्युतिः ।
 अमर्त्यभावं भटपेटके भजत्यमर्त्यदन्तित्वमवाप कुञ्जरः ॥५५॥
 विषाणिनां तीक्ष्णखुरप्रखण्डिता सुदूरमुड्डोय रदाङ्कु शच्युताः ।
 सुरप्रसूनावलिशङ्किभिर्भटैर्न वञ्चितासनान्मुकुटेष्वताडयन् ॥५६॥
 निवेशनीयौ न शिरीषकोमलौ भुजौ त्वया संवरणसृजः पदे ।
 महार्घपुष्पे समयेत्र मेनके द्युमालिकास्ते कलयन्ति लुब्धताम्॥५७॥
 न भर्तृदुर्भिक्षमिहास्ति किञ्चन किमन्यया स्वीकृतमेव वाञ्छसि
 विलोपयिष्यन्ति तव प्ररुभतां स्वयं परीक्षाविषये सुराङ्गनाः॥५८॥
 अमी विमानेष्वाधिरोपितास्त्वया मुधैव मूर्खामुकुलीकृतेक्षणाः
 अवाप्य संज्ञां कृतफालमुत्सुकाः पतन्ति पश्य प्रथनाङ्गणे पुनः॥५९॥
 विभिन्नमयोदममुष्य चेष्टितं भटस्य पश्य प्रथम तिथेरपि ।
 विमानवातायनतो यदन्यया विलोकितस्तां प्रतिसत्त्वरोभवत्॥६०॥
 कयात्र माला प्रथमं समर्पिता न वेद्मि वादे युवयोस्तदन्तरम् ।
 तदेष सौभाग्यनिधिर्भटाग्रणीः करोतु वाचा स्वयमेव निश्चयम्॥६१॥
 विलोभ्य सौभाग्यमदाद्भटोनया सलीलमन्तर्हितया प्रतारितः ।
 अयं स्मरान्धस्तरसा परङ्मुखीं अमात्पिशाचीमुपसृत्य मुञ्चति ईर
 न नारदादस्ति परोविशारदःपरो पकारप्रवणासु वृत्तिषु ।
 क्षणात्समुत्पाद्य महारणानि यः करोति नः कार्मुकदुर्गतिच्छिदम्॥६३॥
 सहर्षमित्यप्सरसामजायत प्रजागरं पञ्चशरस्य तन्वती ।
 प्रवीरकण्ठग्रहशान्तकौतुकप्रधावितानां श्रवणासृतं कथा॥६४॥

अत्रान्तरे नरपतिर्जयकुञ्जरस्य

ज्यानादनिष्ठुरमधिष्ठितपृष्ठपीठः ।

शिक्षाशरव्यवदरातिचमूभटानां

नारोचपक्तिभिरपूरयदाननानि ॥६५॥

आरोहकान्करिषु वाजिषु चाश्ववारा-

न्पोतान्पदातिनिवहांश्च विधाय भूमौ ।

नामाङ्कितैरिषुभिरेष चुलुक्यवीर-

श्चोलस्य कीलितमशेषबलं व्यधत् ॥६६॥

ब्रूमः किमन्यदयमुत्सवतेस्म यत्र

द्वय्येव तत्र गतिराविरभून्वृषाणाम् ।

कारागृहे पतनमाशुपलायनं वा

चोलोपि शीघ्रमपसारमतश्चकार ॥६७॥

अथ शिथिलितचापश्चोललक्ष्मीं गृहीत्वा

कृतविविधविनोदस्तत्र काञ्चीनगर्याम् ।

निजनगरमगच्छत्सान्द्रमातङ्गसेना-

भरभरितदिगन्तः कुन्तलक्ष्माभुजङ्गः ॥६८॥

इति श्रीविक्रमांकदेवचरिते महाकाव्ये त्रिभुवनमल्लदेवविद्यापति

काश्मीरकभट्टबिल्हणविरचिते सप्तदशः सर्गः ॥१७॥

— १३६ —

काशमीरेषु प्रवरपुरमित्यस्ति मुख्यं पुराणां

यातं गौरीपरिणयविधौ साक्षितामिन्दुमौलेः ।

यस्यायान्ति प्रकृतिकुटिलास्ते वितस्तातरंगाः

स्वेच्छाधावत्कलियुगगजाधोरणत्वेङ्कुशत्वम् ॥१॥

उद्यानेभ्यः सकलभुवनाश्चर्यमाधुर्यधुर्यं

पीत्वा द्राक्षासमिव करैर्जातसंतापशान्तिः ।

ज्येष्ठाषाढेष्वपि कमलिनीकामुक्तो यत्र धत्ते

रत्नश्रेणीकिरणकलिकाकोमलामंशुमालाम् ॥२॥

कृत्वा शैलं करतलतुलारूढमर्धेन्दुमौले-

र्हास्यज्योत्स्नां दशसु विस्तृतान्दिक्षु दर्पाद्दशास्यः ।

यस्मादुच्चैः स्फुरितमहसां ब्राह्मणानां निवासा-

च्छापत्रस्तस्त्वरितमगमदूरतः पुष्पकेश ॥३॥

उत्तुङ्गानां मणिगृहभुवां यत्र वातायनेषु

व्याख्याभिख्याप्रणयिनि जगद्गुल्मे सूरिकके ।

देवाः प्रोद्यद्दिपुलपुलकाः किं न वर्षन्ति पुष्पै-

र्नाशङ्कन्ते यदि सुरगुरोस्तत्र वैलब्धदीप्त्याम् ॥४॥

धत्ते यस्याः स्फटिकशुचिभिः क्षालयन्त्या यशोभिः

स्थित्या गौरीगुह्यरपि गिरिर्नूनमुच्चैः शिरांसि ।

गङ्गास्पधौदुरमधुमतीसैकतोत्तंसहंसी

विद्यारक्षाधिकृतमकरोत्सा स्वयं शारदा यत ॥५॥

ब्रूमः सारस्वतकुलभुवः किं निधेः कौतुकानां

तस्यानेकाद्भुतगुणकथाकीर्णकर्णामृतस्य ।

यत्र स्त्रीणामपि किमपरं जन्मभाषावदेव

प्रत्यावासं विलसति वचः संस्कृतं प्राकृतं च ॥६॥

मन्ये मन्याचलविदलितान्निर्गता दुग्धसिन्धो-

र्भत्वा यस्मिन्मृतलहरी सत्कवीनां वचांसि ।

प्रेमाकृतं कुवलयदृशां शीकरैः पूरयन्ती-

द्राक्षाखण्डेष्वमृतकिरणापाण्डुषु स्थैर्यमाप ॥९॥

दुर्लभयत्वं कलियुगदृशां प्रापिते ब्रह्मधाम्ना

क्षिप्त्वा विद्याविभवमखिलं यत्र विश्वासधानि ।

स्थाने तत्र त्रिनयनगुरोर्निर्जने नूनमद्रेः

सा वाग्देवी भजति शमिताशेषतापा तपांसि ॥१०॥

तीरद्वंद्वप्रणयिभवनव्रातवातायनस्थ-

स्वैरक्रीडोच्छलितमिथुनच्छिन्नहारावकीर्णा ।

यस्योत्संगे कुलसरिदसौ नीलकण्ठप्रसूता

धत्ते तारातिलकितनभःसङ्गिगङ्गानुकारम् ॥११॥

स्नानक्रीडाव्यसनसमये कुङ्कुमं कामिनीनां

यत्रोत्तर्य स्तनपरिसराद्गृह्णीती कान्तमङ्के ।

ईर्ष्यामर्षादिव निरवधिर्वीचिहस्तैर्वितस्ता

कर्षत्यासां प्रतिकलमलिश्यामलान्केशपाशान् ॥१२॥

यस्मिन्कापि रुफुरतिः ललिता श्रीकटाक्षच्छटासु

श्रीमद्भट्टारकमठपुरोपान्तसीमन्तिनीनाम् ।

या निःशङ्कं श्रुतिकुवलयस्यपलापप्रवृत्ता

भग्ना किं चित्परिमलमिलद्भृङ्गकोलाहलेन ॥१३॥

यस्मिन्सह्याः कथमशिशिलप्रेङ्खितभ्रूलतानां

किंचिच्छीलामसृणमुकुलाः कामिनीदृष्टयस्ताः ।

यासां भासाकुलितहरिणप्रेयसीभंगुराणा-

मुत्संगस्थः किमपि भजते चापलं पुष्पचापः ॥१४॥

यस्य भ्राम्यद्भ्रमरपटलश्यामकेलिद्रुमाणा-

मारामाणामविरलतया कोप्यसौ संनिवेशः ।

यस्मिन् रामाः कुसुमधनुषं दृग्मिहन्मार्गभर्ग-

कोधज्वालाकिसलयनये सुममुत्थापयन्ति ॥१५॥

अङ्काल्लङ्कापतितरलिताद्याः शिला विप्रकीर्णाः

प्राप्त्यै तासां स्फटिकशिखरी वेदि पर्युत्सुकोपि ।

आस्ते गौरीपतिवृषसुरहोदचिह्नान्यपश्य-

न्यद्गेहानां कलहविमुखः स्फाटिकेष्वाङ्गणेषु ॥१४॥

यत्तग्रस्ता धनपतिपुरी निष्कलङ्का न लङ्का

सातङ्केव त्रिदशनगरी मेरुपृष्ठेधिरूढा ।

इत्यप्राप्य प्रतिभटतया नूनमुच्चैः सगर्वं

यत्प्रद्युम्नक्षितिधरनिभादुत्तमाङ्गं बिभर्ति ॥१५॥

काव्यं येभ्यः प्रकृतिसुभगं निर्गतं कुङ्कुमं च

च्छायोत्कर्षादवति जगतां वल्लभं दुर्लभं च ।

यस्मिन्नन्तः स्थितवति जगत्सारभूते प्रयाताः

काश्मीरास्ते नियतमुरगाधीशरक्षास्पदत्वम् ॥१६॥

लीलावल्लगत्सरसमसृणभू विलासानि यासां

कन्दर्पस्त्री यदि युगशतैः शिक्षते वीक्षितानि ।

रामाः श्यामा रमणरुचयस्ताः कियत्यो न यस्मि-

न्हर्षोत्तालाः सरणिषु रणत्काञ्चयः संचरन्ति ॥१७॥

देवोद्यानेष्वपि तिलकतां पुण्ययोगादवाप्तै-

र्विस्मर्यन्ते न खलु निखिलाश्चर्यसारा यदीयाः ।

श्रीखण्डाम्भःस्नपितमुरलप्रेयसीगरुडपाण्डु-

द्वाक्षाखण्डस्तवकितलतामण्डपास्ते वनान्ताः ॥१८॥

अस्त्यन्योन्यग्रथितलहरीदोर्लताबन्धबन्धु-

र्मध्ये यस्य क्षपितकलुषः संगमः पुण्यनद्योः ।

यस्योत्संगे हलधरकृतास्ते जयन्त्यग्रहारा

ये धर्मस्य क्षतकलिभयाः शैलदुर्गोभवन्ति ॥१९॥

यस्मिन् किञ्चित् तदुपवनं यत्र नो केलिवापी

नैवा वापी न विषमधनुष्कार्मणो यत्र रामाः ।

नासौ रामा मनसिजकथाचातभगा युवानः

कामं यस्यां न निविडतरप्रेमबन्धे पतन्ति ॥२०॥

यद्गूषायां विहितवपुषस्तस्य विश्वैकबन्धोः

स्फूर्तिः कीर्त्तिः परमनुपमा सापि विद्यामठस्य ।

यस्मिन्नङ्गीकृतकलकला मेखलाः कामिनीनां

पृष्ठे लग्नं कुसुमधनुष स्त्र्यक्षमप्याक्षिपन्ति ॥२१॥

वैतस्तानां स खलु पयसां संगमो यत्र चर्या

मर्यादायाः कृतयुगभुवः पात्रभूतोद्भुतश्रीः ।

दोलालीलातरलगतिषु मेङ्खितायत्तरङ्गै

रुत्सङ्गेषु त्रिदशसुदृशां देहभाजः पतन्ति ॥२२॥

तत्पर्यन्तस्थितगुणनिकामगडपं यत्र धत्ते

धाम व्योमाङ्गणतिलकतां क्षेम गौरीश्वरस्य ।

रामा रामानुकरणाविधौ यत्र नात्यप्रयोगे

योगस्थानामपि सपुलकं गोत्रमासूत्रयन्ति ॥२३॥

[संग्रामोर्वीपरिवृतमठप्रान्तसीमन्तितोसौ

यस्मिन्नहणोर्वितरति सुधां चन्द्रसीमाप्रदेशः ।

यत्रानन्तक्षितिप्रतिकृतास्ते वितस्तोपकरणे

याताः कान्त्या हरध्वलया हारतामग्रहाराः ॥२४॥

गर्जद्वातायनविततयः शास्त्रगोष्ठीवरिष्ठै

स्ताः काष्ठीलद्विजवसतयो यत्र नेत्रोत्सवाय ।

यासु त्रासं विदधति कलेर्दर्शनादेव विप्राः

सायं प्रातः प्रहुतहुतभुग्धूमधूमैः शिरोभिः ॥ २५ ॥

यत्रानन्तक्षितिपगृहिणीशंकरागारपार्श्वे

तत्तुङ्गिम्ना त्रिभुवनमनोरंजनं गंजधाम ।

श्रुत्वा श्रुत्वा रुतमविरतं यत्र पारावतानां

CC-०. दत्तः अष्टाध्यायिषु अन्तर्गतः पौरुषकर्मणा भवन्ति ॥२६॥

यत्क्षेत्रेषु स्थितिमरचयद्दत्तकलं यत्सिधेवे

जाने जैत्रं किमपि तपसस्तस्य माहोत्स्यमेतत् ।

तत्तत्तस्य प्रथमवयसः स्त्रीजनस्याङ्गकानां

यत्काश्मीरं कनकसुहृदामन्तरङ्गत्वमेति ॥ २७ ॥

गेहं यत्र प्रवरगिरिजावल्लभस्याद्भुतं त-

त्केषामाशां सुरपतिपुरारोपणे नातनोति ।

यद्यातस्य प्रवरनृपतेर्द्यां शरीरेण सार्धं

स्वर्गद्वारप्रतिममुपरि च्छिद्रमद्यापि धत्ते ॥ २८ ॥

दृष्ट्वा यस्मिन्नभिनयकलाकौशलं नाटकेषु

स्मेराक्षीणां मसृणकरणासङ्गदत्ताङ्गहारम् ।

रम्भा स्तम्भं भजति लभते चित्रलेखा न रेखां

नूनं नाट्ये भवति च चिरं नोर्वशी गर्वशीला ॥ २९ ॥

यस्मिन्नुर्वीपतिगृहततेस्तुङ्गिमा वर्यते किं

तस्याञ्जुचतुरवनिताभूषितानेकभूमेः ।

जाने यस्यां कुसुमधनुः स्वर्गरामामनांसि

क्रीडावातायनकृतपदस्यैव लक्ष्मीभवन्ति ॥ ३० ॥

यत्र स्त्रीणां मसृणधुस्तणालेपनोष्णा कुचश्री

स्ताः कस्तूरीपरिमलमुचः पट्टिका राङ्गवाणाम्

नौपृष्ठस्थाः शिशिरसमये ते वितस्ताजलान्तः—

स्नानावासाः प्रचुरमपि च स्वर्गसौख्यं दिशन्ति ॥ ३१ ॥

वक्त्रन्यस्तैस्तुहिनशकलैर्दन्तुरा वारिकुम्भाः

काश्मीरीणां सरसकदलीकोमला गात्ररेखाः ।

भीष्मग्रीष्मकलमविरतये सर्वसाधारणत्वम्

यस्मिन्नायान्त्यपि हिमशिलाशीतलानि स्थलानि ॥ ३२ ॥

सत्यत्यागप्रमुखनिखिलोत्कर्षसंपत्तिसीमा

तस्मिन्नासीदवनिवनितावल्लभानन्तदवः ।

वैरिस्तम्बेरमघनघटागर्जितानामगम्भे

चक्रे धारापयसि यदसेः कीर्तिहंसी निवासम् ॥३३॥

दत्त्वा शोकं शकपरिवृढप्रौढसीमन्तिनीनां

येन क्रीडाविदलितदरद्वीर्घदर्पः कृपाणः ।

अस्पृश्यानामिव परिचयाद्विभ्रता दोषशङ्कां

धौतः क्षोणीवलयजयिना जह्नु कन्याजलेषु ॥३४॥

कतुं कीर्त्या तिलकमलकागोपुराणां गतेन

क्रौञ्चस्याङ्गे भृगुपतिशरच्छिद्रमद्रेर्विलोक्य ।

येन क्रीडालवशबलिताः पीवरे बाहुदण्डे

चण्डध्वाने धनुषि च रुषा सूत्रिता दृष्टिपाताः ॥३५॥

सिद्धैरध्यासिततटभुवः स्नातसप्तर्षिहस्त-

न्यस्तभ्राम्यत्तिलतिलकितग्रीतसो मानसस्य ।

यत्कान्ताभिः शिरसि विधृताः सारसौभाग्यलोभा

त्कैलासस्थत्रिनयनवधूक्षालिताङ्गास्तरङ्गाः ॥३६॥

यः संतोषं चरितविषये पूर्वपुंसां न भेजे

सारग्राही रघुपतिकथामत्सरादेकवीरः ।

क्रुद्धः क्रीडोद्धृतहरगिरेस्ते हि रोहत्कलङ्का

लङ्काभर्तुर्भुजंतरुवनच्छेदनं नार्धचन्द्रैः ॥३७॥

चम्पासीम्नि क्षितिपतिकथाधाम्नि दार्वाभिसारे

त्रैगर्तीषु क्षितिषु भवने भर्तुलक्षोणिभर्तुः ।

क्रीडाशैलीकृतहिमगिरेर्हासभीतेव यस्य

भ्राम्यत्याक्षां सुकृतवसतेर्भूप्रतापोदयानाम् ॥३८॥

कृत्वामध्ये सठमनुपमोत्तुंगदुर्गानुकारं

वैतस्त्यैर्नृग्रथितपरिखारेखमम्भोभरेण ।

लग्नाः शङ्खैर्नभसि विजयक्षेत्रभट्टाग्रहाराः

प्राकारैस्त्वकलिभयभिदे येन धर्मस्य नीलाः ॥३९॥

देवी तस्य प्रचुरयशसश्चन्द्रिकेवेन्दुजाता

याता ख्यातिं जगति सुभटेत्यादिभार्या बभूव ।

मन्त्रे यस्याः स्थितिमनुपमां सापि कुरठानुकर्तुं

वैकुरठोरःस्थलजलधरोत्सङ्गसौदामिनी श्रीः ॥४०॥

तस्यास्त्यागव्रतविलसिते कः परिच्छेदमुद्रा-

माविष्कर्तुं प्रभवति दयाज्ञान्तिदाक्षिरयसीम्नः ।

लक्ष्मीं यस्याः क्षितितलगतां पाददासीमकार्षी-

द्भर्तुः क्षोणीपतिशतशिखारत्नशायः कृपाणः ॥४१॥

नो कायस्थैः कुटिललिपिभिर्नो विटैश्चादुदक्षै-

र्न प्रत्यक्षस्तव नपटुभिर्लुण्ठिता गायनैश्च ।

देवागारद्विजगुरुगृहाण्येव यत्संगृहीता

याता लक्ष्मीर्निजचपलतादोषशुद्ध्यर्थिनीव ॥४२॥

श्रीकाश्मीरक्षितिभुजि गते वश्यतां यदुणाना-

मूहुश्चिन्ताकलमपरिचयं कानि नान्तःपुराणि ।

स्वच्छा कीर्तिनभसि बिसिनीपत्रमित्रे लुलोठ-

श्रोतद्वारासलिलमकरोद्दामलक्ष्मीः कृपाणम् ॥४३॥

कीर्तिज्योत्स्नास्नपितभुवनश्रीरधिष्ठानमध्ये

शोभाज्येष्ठं मठमकुरुत स्वीयनामाङ्कितं सा ।

यस्मिन्विद्यारसिकमनसामास्पदे देशिकानां

का नामाक्षणीर्जति न सुधावर्तितां नर्तितश्रीः ॥४४॥

भागडागाराण्यकृत विदुषां सा स्वयं भोगभाञ्जि

स्वातन्त्र्येण ग्रहणमवनेर्ब्राह्मणानामवादीत् ।

यामस्तम्बे रमसहचरस्फूर्जदाशागजेन्द्र-

क्षोणीकोशप्रणयिनि यशस्येव रक्षामकार्षीत् ॥४५॥

चक्रे धाम त्रिभुवनगुरोः सा वितस्तासमीपे

कामारातेः शिखरनिकरदुर्गणनक्षत्रमार्गम् ।

कूजत्कारुची निवहपिहितज्याध्वनिर्नर्तकीनां

यस्योपान्ते भवति न भवकोधपात्रं मनोभूः ॥४६॥

यस्या भ्राता क्षितिपतिरिति क्षात्रतेजोनिधानं

भोजहमाभुत्सदृशसहिमा लोहराखण्डलोभूत् ।

शङ्खे लक्ष्म्याः शिरसि चरणं न्यस्य वक्षःस्थितायाः

प्राप्ता लीलातिलकतुलनां यन्मुखे सूक्तिदेवी ॥४७॥

यस्य प्राप्ताद्भुतपरिणतेः कर्कशे तर्कमार्गे

त्यागः कासां विचरति गिरां गोचरे कान्तकीर्तिः ।

येन न्यस्ता दलितविपदां कोविदानां गृहेषु

श्रीर्नाथापि स्वपिति ललनाभूषणानां निनादैः ॥४८॥

गण्डाभोगोड्डमरविलुठद्वाष्पधाराशतेन

व्यातन्वानः कुचयुगतटीः पङ्क्तिः सुन्दरीणाम् ।

यस्य क्रीडाकवलमकरोद्राजपुर्याः प्रतापं

बाहुर्बाहुस्थलकमलिनीराजहंसांभुवाहः ॥४९॥

श्रीशीबनधे कुवलयदृशां द्रागवज्जारसजैः

पार्श्वद्वन्द्वेऽप्यतनुत सभामण्डनं परिडितालीम् ।

रत्नच्छायाच्छुरणसुभगस्वर्णपत्रावमानी

मानी मेने अवसि च कथां वैष्णवीं भूषणं यः ॥५०॥

पुण्यैरैरावतकरिकरोच्चण्डदोर्दण्डशाली

देव्यां तस्यां कलशनृपतिस्तस्य जातस्तनूजः ।

संख्योत्संगादपस्तवतां भूभुजां वल्लभा श्रीः

खड्गे यस्य द्विपदमघीपंकलिप्ते लुलोठ ॥५१॥

दर्पाधमात प्रतिभटनृपत्रात सेनाशिरांसि

त्यक्त्वा सान्द्रोरलसदसिलताशैवलश्यामलानि ।

हेमाम्भोजप्रतिमवदनालोकनादेव यस्य

प्राप्ता लक्ष्मीशरणनिकटं कीर्तिं हंसावतंसा ॥५२॥

दिग्धात्रासु रक्तिकविशदच्छायमच्छोदमेत्य

भ्राम्यन्निन्द्रायुधसुरपुटीट्टङ्कितासु स्थलीषु ।

कादम्बर्याः परिजनमसौ मर्त्यलोकैकचन्द्र-

श्चन्द्रापीडस्तुतिषु विदधे संकुवद्वाग्विलासम् ॥५३॥

येनोदीच्यां दिशि गतवता वन्दितोसौ गिरीन्द्र-

श्चञ्चच्चण्डीपतिवृषसुरहोदलेखावतंसः ।

शंके लंकापतिकरतलोत्क्षेपलोलस्य यस्य

भ्रष्टाः केचित्तलभुवि गणा नाधुनाप्युच्छ्वसन्ति ॥५४॥

धृत्वा काश्चित्कनककपिशः कौतुकाद्यक्षकन्याः

प्रत्यागच्छन्धनपतिपुरादुत्तरं मानसं यः ।

दत्ताश्लेषं ह्रस्वमुकुटतः सूस्तया नाकनद्या

हेमाब्जानामकृत वसतिं मानसादाहृतानाम् ॥५५॥

यस्योदारां परिकलयतः शस्त्रशास्त्रप्रतिष्ठां

द्वे प्रेयस्यौ जगति विदिते श्रीश्च वाग्देवता च ।

एका भेजे भुजमभिनवान्भोजलीलातपत्रा

श्वेतच्छत्रायितसितयशश्चन्द्रिकान्या मुखेन्दुम् ॥५६॥

अश्वैः कृत्वा पवनगतिभिर्लङ्घनं बालुकाढ्ये-

र्यः स्त्रीराज्यं व्यजयत जयापीडतुल्यप्रभावः ।

तत्र श्लाघामसहत पुनर्नैकवीरः स यस्मा-

त्सत्रीडोभूदपि रघुपतौ ताडके ताडकायाः ॥५७॥

यत्खड्गस्य स्मरणवशतः कालजिह्वासनाभे-

स्त्रासोल्लासत्रुटितमदनोन्मादमुद्रानरेन्द्राः ।

हर्षं वर्षाजलदपटले कुन्तलेष्वङ्गनानां

क्षोणीलेखास्वपि च मुमुचुः शाद्वलश्यामलासु ॥५८॥

दृष्ट्वा देव्याः कुचपरिसरे हर्षदेवस्य मातु-

स्तुष्टः सेवानतधनपतिप्राप्तिलेकावलीं यः ।

कर्तुं वाञ्छन्निखिलभुवनोन्नयनस्योपकारं

प्रत्यानीते रघुपतिशरैः पुष्पके खेदमाप ॥५९॥

खड्गे कुरठीभवति शिरसां छेदतः खेदमाणा-

द्यः शाणार्थी हरशिखरिणा प्राग्गृहीतोऽजितेन ।

यः पौलस्त्यं तमपि जितवान्सोऽपि यस्योपमायां

शङ्के लोकोत्तरगुणनिधेर्मुद्रितो रामभद्रः ॥६०॥

मन्यक्षोणीधरविदलिताम्भोधितीव्रकुचेव

हमाभृन्मूलान्यपि दलयति व्यायतैर्वा तरङ्गैः ।

सेनाचक्रक्षपितसलिलां तां चकार स्थलं यः

श्रीकाश्मीरक्षितिकुनुदिनीचन्द्रसाश्चन्द्रभागाम् ॥६१॥

धत्ते यस्यास्तपनदुहितुः शेषकलोललीलां ।

नीलच्छाया तुरगपटली भास्करस्याधुनापि ।

तां कालिन्दीं सकलजयिनो यस्य सेनासमूहः

पृथ्वीली ललितकवरीमेव कामाचचान् ॥६२॥

उर्वीमुर्वीधरसहचरैः पूरयन्त्यो यशोभि-

स्तन्निःशेषक्षितिपरिजयी कौरवं क्षेत्रमागत ।

यत्र क्षत्रक्षतजपटले पार्यबाणाभिघातैः

कर्णभ्रष्टं कुरुपतियशोदन्तपत्रं समञ्ज ॥६३॥

यस्य प्रेयान्प्रथमतनयः कां न चक्रे सहर्षं

श्रीहर्षादप्यधिककवितोत्कर्षवान्हर्षदेवः ।

तीक्ष्णः स्वस्मिन्कनकवलये येन चक्रे रणेषु

हमाभृच्चूडामणिकषणतः कुरठधारः कृपाणः ॥६४॥

यस्यापूर्वा पदपरिणतिः कापि चर्याविचारे

वाक्चातुर्यं प्रसरति गतिर्वादिनां मौनमुद्रा ।

प्रख्यातं तत्त्रिजगति पुनः सर्वभाषाकवित्वं

यस्यास्वादे भवति सिकता कर्कशापि ॥६५॥

येनोत्कृष्टाव्यसनगुरुणा दत्तपातास्तरुण्यः

स्वस्मिन्सूक्ष्मावलम्बपरवशा वाष्पपङ्के लुठन्ति ।

तासां गण्डस्थलभुवि पुनः पाण्डिमा वर्यते किं

यत्र स्पष्टीभवति शपथैः श्रोत्रयोर्दन्तपत्रम् ॥६६॥

दुर्गे प्राप्य क्षितिपतियशोधाम यस्यानुजोसौ

कल्याणार्थिन् खलु पुलकोत्कर्षमुत्कर्षदेवः ।

येनारोप्य स्वभुजशिखरे निर्मिता दूरमुर्वी

मलेच्छक्षोणीपतिहरिखुरक्षोदमुद्रादरिद्रा ॥६७॥

नाम्नापरो विजयमल्ल इति प्रतापी

भूषस्य लस्य लनयो नयनाभिरामः ।

पुष्पोपहारवति नूतनदन्तकान्त्या

वाग्देवता व्यधित यस्य मुखे प्रवेशम् ॥६८॥

नित्याभ्यासात्परिणतलिपेः सष्टुराश्वर्यलेखं

तस्मात्तस्य वपुषि ललिते तस्य भूपालसूतोः ।

यत्र स्फूर्जल्लटभललनालोलोभैकपात्रे

जागर्ति ज्यानिनदमुखरः संततं पुष्पचापः ॥६९॥

तस्मादस्ति प्रवरपुरतः सार्धगव्यूतिमात्रां

भूमिं त्यक्त्वा जयवनमिति स्थानमुत्तुङ्गचैत्यम् ।

कण्डं यस्मिन्नमलसलिलं तत्तत्कस्यादिभर्तु-

धर्मध्वंसोद्घातकलिशिरश्छेदचक्रत्वमेति ॥७०॥

यस्यास्ति खोनसुख इत्युपकरणसीनि

ग्रामः समग्रगुणसंपद्व्याप्तकीर्तिः

आलानरूपबहूपवति प्रविष्टं

नो यत्र बन्धनभियेव कलिद्विषेन ॥११॥

ब्र सस्तस्य प्रथमवसतेरद्भुतानां कथानां

एको भागः प्रकृतिसुभगं कुंकुमं यस्य सूते
 द्राक्षाभ्यः सरससरयूपुरङ्गकच्छेदपाण्डुम् ॥९२॥
 कर्तुं कीर्तिप्रणयि कुशलाः कौशिकं गोत्रमुच्चै-
 स्तत्र ब्रह्मप्रवणमनसो ब्राह्मणाः केचिदासन् ।
 यान्काश्मीरक्षितितिलकतां मध्यदेशावतंसा
 न्गोपादित्यक्षितिपतिरसौ पावनानानिनाय ॥९३॥
 कीर्तिं येषां शतमखसखीमुत्सुकानामवासुं
 धूमस्तोमे मखपरिचितेः पूरयत्यन्तरिक्षम् ।
 नो केषांचिद्वचनमश्रुणोन्नाकरोन्नाकचिन्तां
 शक्रश्चित्रार्पित इव परं क्षायया भूदरिद्रः ॥९४॥
 तेषां जगत्त्रयपवित्रचरित्रभाजां
 धत्तेस्म मुक्तिकलशः कुलशेखरत्वम् ।
 यस्याग्निहोत्रपरिशीलनजेन जाता
 श्वेदाम्भसेव कलिकाल कलंकशान्तिः ॥९५॥
 शङ्के पङ्केरुहवसतिना स्थापिता शान्तिहेतो
 रन्योन्येर्ष्याकलहचतुरा याश्चतुर्ष्वाननेषु ।
 एकत्रैव स्वमुखकमले लीलया वल्लभानां
 चक्रे तासामपि चतसृणां यः श्रुतीनां निवासम् ॥९६॥
 दातापराक्रमधनः श्रुतपारदृष्टा
 नाम्नास्य राजकलशस्तनयो बभूव ।
 प्रालेयभूधरगुहास्तिमिरच्छलेन
 यस्याधुनापि मखधूममिवोद्गमन्ति ॥९७॥
 द्राक्षापूर्णान्यखिलजनताभोगहेतोर्वनानि
 व्याख्यास्थानान्यमलसलिबा यस्य कृपाः प्रपाश्व ।
 स्थानेस्थाने सुकृतवसतेर्मण्डलाग्रावतंसा
 धमेऽथाविष्कृतकलिभयस्थगरक्षा बभूवुः ॥९८॥

क्षमासारः सारस्वतरसनिधानं श्रुतिनिधिः

समुत्पन्नस्तस्मादमल यशसो ज्येष्ठकलशः ।

महाभाष्यव्याख्यामखिल जनवन्द्यां विदधतः

सदा यस्य च्छात्रैः सितलकितमभूत्प्राङ्गणमपि ॥९८॥

इष्टापूर्तैष्वतिथिविषये सान्त्वने सेवकाना.

मन्येऽवन्येऽवपि च गहनं किन्नु तस्योचितेषु ।

दृष्टादृष्टोपकरणगणप्राप्तो यः प्रवीणः

नागादेवीमलभत शुभस्तोमपात्रं कलत्रम् ॥८०॥

अङ्गैस्त्वङ्गत्कनकरुचिभिः कार्मणं लोचनानां

मूरेस्तस्मादजनि जगतां शेखरो बिल्हणाख्यः ।

सान्द्रैर्वेदध्वनिभिरनभिठ्यक्तमञ्जीरनादा

मौञ्जीवन्धात्प्रभृति वदने यस्य वाग्देवतासीत् ॥८१॥

साङ्गो वेदः फणिपतिदिशा शब्दशास्त्रे विचारः

प्राणा यस्य अवणसुभगा सा च साहित्यविद्या ।

को वा शक्तः परिणयितुं श्रूयतां तत्त्वमेत-

तप्रज्ञादर्शं किमिव विमले नास्य संक्रान्तमासीत् ॥८२॥

चक्रं यस्याकियत् वदनप्रेक्षि विद्यावधूनां

श्रीवाग्देव्याश्चरणरजसा कार्मणत्वं गतेन ।

यातः सार्धं दिशि दिशि पुनर्वन्धुराः सर्वबन्धाः

कीर्तः पारिप्लवविदलने सौविदलला बभूवुः ॥८३॥

विद्वत्तायाः स खलु शिखरं प्राप यस्येष्टरामो

ज्येष्ठो भ्राता क्षितिपतिशतास्थानलीलावतंसः ।

वक्तुं काव्यामृतरसभरास्वादसक्तैर्यदीमि

दृष्टा देवी सुकविजननी सा प्रपापालिकेव ॥८४॥

यस्यानंदः समजनि यशोभाजनस्यानुजोसौ

CC-0 Prof. Dr. V. S. Chavhan, K. J. Somaiya Institute of Engineering & Technology, Goregaon Initiative

प्रस्थे दीःस्थं हिमशिशिरसिः प्राप्य काठिन्ययोगा-
ज्जाने जिह्वाकिसलयसखी शारदा यस्य जाता ॥८५॥

काश्मीरेभ्यः सकलममलं शास्त्रतत्त्वं गृहीत्वा
प्रालेयाद्वेरेपि गुणमसौ निश्चितं स्वीचकार ।

देशेदेशे कथमपरथा वादिनामाननानि
क्रुदुञ्चके तुहिनपटलप्लुष्टपद्मोपमानि ॥८६॥

दोलालोलह्वनजघनया राधया यत्र भगवता
कृष्णक्रीडाङ्गणविटपिनो नाधुनाप्युच्च्वसन्ति ।

जल्पक्रीडामयितमथुरासूरिचक्रेण केचि-
तस्मिन्वृन्दावनपरिसरे वासरा येन नीताः ॥८७॥

निःसामान्यश्रुतगुणकथादत्तवादिज्वराणां
कात्रीधानां दिशिदिशि हठात्तन्वतां यद्यशांसि ।

आसीदाशागजमदजलास्वादमत्तद्विरेफ-
श्रेणीगीतध्वनिकलकलः केवलं सोन्तरायः ॥८८॥

ग्रामो नासौ न स जनपदः सास्ति नो राजधानी
तन्नारण्यं न तदुपवनं सा न सारस्वती स्रूः ।

विद्वान्मूर्खः परिणतवया बालकः स्त्री पुमान्वा

यत्रोन्मीलत्पुलकमखिला नास्य काठ्यं पठन्ति ॥८९॥

यस्योक्तं क्लृप्तं मेणिमयगृहैर्लीलयोत्तारिता श्री-

र्व्योमोत्तंसात् त्रिदशपुरतः प्राप्तसोपानलीलैः ।

द्वारे गङ्गां कृतकलकलां तर्जयित्वा प्रविष्टा

कीर्तिर्यस्य स्ववशमकरोत्तत्पुरं कान्यकुब्जम् ॥९०॥

धर्मस्येव व्युपरतकलेर्यत्र गीर्वाणसिन्धु-

स्रोतःकोशो विशति यमुनावेशिभङ्ग्या कृपाणः ।

तस्मिन्वारान्कति न कृतिना तीर्थनाथे प्रयागे

दत्ताविष्ठादुत्तगुणगणोपार्जिता येन लक्ष्मीः ॥९१॥

मन्ये आस्यत्कलियुगभयादागतस्योपकण्ठे

धर्मस्याध्वग्नमविरमणं शीकरैर्यां करोति ।

वाराणस्यां पुरि परिहृतो येन तस्यां द्यु सिन्धौ

स्नात्वा दैवोपनतकुचपालोकनोत्थः कलंकः ॥६२॥

कालः कालञ्जरगिरिपतेर्यः प्रयाणे धरित्रीं

लुप्तसाराणां खुरपुटरवैः जमापशून्यां चकार ।

श्रीडाहालक्षितिपरिवृढः सोपि यं प्राप्य वृत्तं

कर्णः कर्णामृतसरसभरास्वादमन्तस्ततान् ॥६३॥

यस्यातृप्तः स्फटिकगिरिणा तं विनिक्षिप्य वामे

प्राप्तेयाद्रेः क्षणमभिमुखो दक्षिणः पाशिरासीत् ।

तं पौलस्त्यं विदलितवतः स्रुक्तिनिःस्यन्दशीतां

सीताभर्तुर्व्यरचयदसौ राजधानीमयोध्याम् ॥६४॥

नीत्वा गङ्गाधरमधरतां डाहलाधीशधाम्नि

क्रीडाकान्तप्रतिभटकवेः पूर्वदिक्काटरेषु ।

निर्जित्यैरावतमदजलभ्रान्तभृङ्गालिनादा-

न्नुज्जाम्णोपि अवसि लुठितं यस्य शंके कथाभिः ॥६५॥

भोजः जमाभृतस खलु न खलैर्यस्य साम्यं नरेन्द्रै-

स्तत्प्रत्यक्षं किमिति भवता नागतं हा हतास्मि ।

यस्य द्वारोड्डमरशिखरकोडपारावतानां

नादव्याजादिति सकलं व्याजहारेव धारा ॥६६॥

कक्षाबन्धं विदधति न ये सर्वदैवान्निशुद्धा-

स्तद्भाषन्ते किमपि भजते यज्जुगुप्तास्पदत्वम् ।

तेषां मार्गे परिचयवशादर्जितं गुर्जराणां

यः संतापं शिथिलमकरोत्सोमनाथं विलोक्य ॥६७॥

तामप्येष क्षितिपतिशतालोकनौत्सुक्ययोगा-

दाचक्राम क्रमुकविटपिण्यामलभिकथितेणाम् ।

यत्र स्वेच्छाप्रसरमधुनाप्यम्बुराशेर्भिनन्ति

क्षिप्ता तीक्ष्णपहरणमिषाद्भार्गवेणार्गलेव ॥८८॥

खल्वाटत्वं शिरसि घटयन्मन्बुधेर्यश्चकासे

लङ्कानाथापहततनयापृष्ठलग्नेव धात्री ।

सीतावार्ताश्रवणचक्रितेवान्तिके राक्षसानां

सेतोस्तस्माद्यदि परमगान्नास्य कीर्तिः परस्तात् ॥८९॥

सामान्योर्वीपतिषु विमुखः शेखरोसौ बुधानां

यातस्तस्यां ककुभि शनकैः कौतुकी दक्षिणस्याम् ।

यल्लोलाक्षीकुचतटभुवां ब्रूमहे किं गुह्यत्वं

यासां शिष्यस्त्रिभुवनजयी जृम्भते पञ्चबाणः ॥९०॥

नीलच्छत्रोन्नदगजघटापात्रमुत्तन्नस्तचोला-

ञ्चालुक्येन्द्रादलभत कृती योत्र विद्यापतित्वम् ।

अस्मिन्नासीत्तदनु निविडाश्लेषहेवाकलीला

वेल्लद्बाहुकणितवलया संततं राजलक्ष्मीः ॥९१॥

दिङ्मातङ्गैरपि सपुलकैः शुश्रुवे यस्य कीर्ति-

निद्रामुद्राप्रणयिषु मदास्वादतः षट्पदेषु ।

तेन प्रीत्या विरचितमिदं काव्यमव्याजकान्तं

कर्णाटेन्दोर्जगति विदुषां कण्ठभूषात्वमेतु ॥९२॥

लब्धा लक्ष्मीर्दिशिदिशि कृताः सम्पदः साधुभोग्याः

पाप्मा योग्यैः सह कलहतः कुत्र नोच्चैर्जयश्रीः ।

गोष्ठीबन्धः सपदि सुजनैः सारनिष्कर्षदत्त-

प्रज्ञालब्धस्तुतिभिरचिरादस्तु काश्मीरकैर्मै ॥९३॥

आरुन्नाम नृपप्रसादकणिकामद्रादम लक्ष्मीलवा-

न्किञ्चिद्वाङ्मयमध्यगीष्महि गुणैः काञ्चित्पराजेष्महि

इत्यज्ञानमयीमकार्म कियतीं नानर्थकन्यां मनः

स्वाधीनाकृतशुद्धबोधमधुना वाञ्छित्यमर्थापगाम् ॥९४॥

मन्त्राकिन्धाः पवनचटुलोत्तालवीरोदुकूले
 कूलोत्सङ्गे विरचितवतां योगनिद्राभियोगम् ।
 शेषाः केषामपि परिणतौ वासराः पश्यभाजां
 शान्तस्वान्तस्थितगिरिसुतावल्लभानां प्रयान्ति ॥१०५॥
 स्वेच्छाभङ्गुरभाग्यमेघतडितः शक्या न रोद्धुं श्रियः
 प्राणानां सततप्रयाणपटहश्रद्धा न विश्राम्यति ।
 त्राणं येन यशामये वपुषि वः कुर्वन्ति काठ्यासृतै-
 स्तानाराध्य गुरुन्विधत्त सुकवीन्निर्गर्वमुर्वीश्वराः ॥१०६॥
 हे राजानस्त्यजत सुकविप्रेमबन्धे विरोधं
 शुद्धा कीर्तिः स्फुरति भवतां नूनमेतत्प्रसादात् ।
 तुष्टैर्बद्धं तदलघु रघुस्वामिनः सच्चरित्रं
 कूटैर्नीतस्त्रिभुवनजयी हास्यमार्गं दशास्यः ॥१०७॥
 यस्य स्वेच्छाशवरचरितालोकनत्रस्तयेव
 न्यस्तश्चूडाशशिकलिकया कापि दूरे कुरङ्गः ।
 स व्युत्पत्ति सुकविवचनेष्वादिकर्ता श्रुतीनां
 देवः प्रेयानचतुर्दुहितुर्निश्चलां वः करोतु ॥१०८॥
 इति श्री विक्रमांकदेवचरिणे महाकाव्ये त्रिभुवनपल्लवदेवविद्यापति
 काश्मीरकभट्टश्रीचित्कणविरचितेष्टादशः सर्गः ॥१०८॥
 इति श्रीत्रिभुवनमल्लदेव विद्यापतिकाश्मीरकभट्टश्रीचित्कणविरचितेष्टादशः कृतिर्विक्रमं क-
 देवचरिताभिधानं महाकाव्यं समाप्तम् ॥





